जैन पाठावली

पुस्तक 5

श्रेणी 5-6

प्रकाशक-

श्री बृहद मुंबई वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ

: संचालित :

मातुश्री मणिबेन मनशी भीमशी छाडवा धार्मिक शिक्षण बोर्ड

धार्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रकाशन दिन

वीर संवत -2552

विक्रम संवत - 2082

ई. स. -फरवरी 2026

प्रथम संस्करण

प्रत -1000

ज्ञानार्थ - रु. 25

प्राप्ति स्थान

श्री बृहद मुंबई वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ

:संचालित:

मातुश्री मणिबेन मणसी भीमशी छाडवा धार्मिक शिक्षण बोर्ड

Aaradhya one Earth
Gr floor, H wing, Naidu colony,
Pantnagar, Ghatkopar (East), Mumbai 400075

Office : 9702277914

Chhayaben Kotecha : 9029933775

Alpaben Mehta: 9820462132

E-mail : jainshikshanboard@gmail.com
website : www.jainshikshan.org

आजीवन-श्रुत सेवा शिरोमणि

(कायमी दाता)

श्री लींबडी अजरामर संप्रदाय, श्याम परिवार के शिष्यरत्न परम पूज्य श्री धैर्य-सौम्य गुरुदेव के शिष्य परम पूज्य उपाध्यायजी श्री भव्य गुरुदेव के सुशिष्य तपस्वीरत्न परम पूज्य श्री राजवीर्यमुनि महाराज साहब का जीवन दर्शन

दीक्षा दिवस-1st फरवरी, 2015
(उम्र वर्ष-63)
दीक्षा पश्चात तपस्या-
अट्ठाइ-62, मासक्षमण -4,
16-भथ्थां-3

पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणांइ
जेसिं पिओ तवो संजमो य खंती य बंभचेरं च

प्रौढवय में दीक्षित होने वाली आत्मा भी तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य के माध्यम से शिघ्रातीशील उच्च गति को प्राप्त करती है।

दीक्षा पूर्व जीवन

गांव रव(कच्छ-वागड) के सुश्रावक श्री करसनभाई देवराजभाई कारिया के पुत्ररत्न श्री रायसीभाई,सात वर्षों तक श्री थाणा संघ के अध्यक्ष,सेवा को अपना जीवन मूल्य बनाए कई धार्मिक गतिविधियों का सफलतापूर्वक नेतृत्व करने वाले और इस काल में भी 64 प्रहरी चौविहारे पौषध-अट्ठाइ जैसी तपस्याओं की धन्य पलों में हृदय से संयम जीवन के प्रति उत्कृष्ट भाव प्रगटे।

ऐसे श्री गुरु भगवंत को कोटि-कोटि प्रणाम

आजीवन-श्रुत सेवा शिरोमणि

(कायमी दाता)

मातुश्री नीलुबेन रायशीभाई करशन कारीया

गाम-रव (कच्छ वागड) हाल-थाणा, मुंबई

श्री थाणा संघ की पाठशाला में पिछले 40 वर्षों से ज्ञानदाता के रूप में नि:स्वार्थ भाव से सेवा कर रहे, अपनी सेवाकाल के दौरान उन्होंने सैकडों बच्चों में ज्ञान का सिंचन किया और कई बहनों को दीक्षा लेने के लिए प्रेरित किया।

धार्मिक शिक्षा बोर्ड ज्ञानदाता परिवार के प्रति उनकी उत्कृष्ट भावनाओं के लिए आभार व्यक्त करता है, जिन्होंने ज्ञानदान योजना में भाग लेकर ज्ञान प्रसार के कार्य में अपना योगदान दिया है।

धार्मिक शिक्षण बोर्ड

बहुत-बहुत आभार मानता हैं और उनके उत्कृष्ट भावों की अनुमोदना करता हैं।

श्रुत प्रभावक

स्व.अनिलकुमार अमृतलाल मेहता (Universal Technoplast)
श्रीमती माधुरीबेन अनिलकुमार मेहता
राजेश अनिलकुमार मेहता सौ. ब्रिजल राजेश मेहता
मा. लोक राजेश मेहता मा. नम्र राजेश मेहता

सुरेन्द्रकुमार वृजलाल मेहता (जमाई) बैतुल
सौ. दिव्या सुरेन्द्रकुमार मेहता
चि. करण सुरेन्द्रकुमार मेहता चि.डो.देवांशी सुरेन्द्रकुमार मेहता

ज्ञानदान योजना में सहभागी बनकर,
ज्ञानप्रचार के कार्य में सहकार देनेवाले,
स्वयं के ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम करने वाले,
लोकोत्तर पुण्य का बंध करनेवाले परिवार का
धार्मिक शिक्षण बोर्ड बहुत-बहुत आभारी है।
आपके शुभ भावो की अनुमोदना करते हैं।

।। नाणस्स सव्वस्स पगासणाऐ ।।

श्री बृहद मुंबई वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ

Shree Brihad Mumbai Vardhman Sthanakvasi Jain Mahasangh

संचालित :

मातुश्री मणिबेन मणशी भीमशी छाडवा - धार्मिक शिक्षण बोर्ड

Matushree Maniben Manshi Bhimshi Chhadva
Dharmik Shikshan Board

Aaradhya one Earth - Gr floor, H wing,
Naidu colony, Pantnagar, Ghatkopar (East), Mumbai 400075

ज्ञानदान महादान

ज्ञान योजना

1,00,000/- श्रुतस्तंभ

₹ 75,000/- श्रुतधार	₹ 11,000/- श्रुतसहयगी
₹ 51 ,000/- श्रुतप्रभावक	₹ 5,000/- श्रुतसहायक
₹ 5,000/- श्रुतप्रेरक	₹ 2500/- श्रुतअनुमोदक

देश-विदेश के हजारों परीक्षार्थी श्रृंखला 1 से 25 की परीक्षा देकर अपना ज्ञान बढा रहे है। धार्मिक शिक्षण बोर्ड को सध्धर बनाने हेतु आप आप ज्ञानदान योजना के भागीदार बनिए और अन्यों को भी प्रेरित जरूर कीजिए.

धार्मिक शिक्षण बोर्ड को दान के लिए बैंकिंग विवरण

A/c Name : Shree Greater Bombay Vardhaman Sthanakvasi Jain Mahasangh

Bank Name : Bank of Baroda **Branch** : Ghatkopar East

IFSC Code : BARB0GHAEAS **A/c. No.** : 70130100028329

चेक, ड्राफ्ट श्री ग्रेटर बाँम्बे वर्धमान स्था. जैन महासंघ के नाम से लिखे।

अतीत के पन्नों से

पूरे विश्व में आज कल प्रलोभन बढते जा रहे हैं। आज का मनुष्य सूर्योदय से सूर्यास्त तक नहीं, बल्कि सूर्योदय से मध्यरात्रि तक यंत्रवत् दौड़ रहा हैं। समय और विश्राम जैसे शब्दों ने उनके जीवन की शब्दावली को न जाने कबसे छोड दीया है। तब सवाल उठता है कि ये सभी प्रयास किसके लिए हैं ?

तो जवाब है कि सुख, समृद्धि, अखूट धन के लिए।

लेकिन क्या इतनी भागा-दौडी करने के बाद भी यह सब मिलता है ?

यंत्रयुग में शायद समृद्धि और धन मिल जाता है लेकिन जीवन यंत्रीकृत बन जाता है। सुख- शांति के पीछे पडने के बावजूद, सुख और शांति हमसे दूर ही रह जाती है। आज हर इंसान किसी न किसी तरह की तकलीफ से घिरा हुआ है। यदि इन सभी कष्टों से मुक्त होना चाहते हैं, तो केवल सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान का धर्म और धर्म की सच्ची समझ ही मदद कर सकती हैं।

इस स्थिति को जानकर, समझकर, बुद्धिमान, दूरदर्शी बडों के मार्गदर्शन के अनुसार मातृश्री मणिबेन मणशी भीमशी छाडवा धार्मिक शिक्षण बोर्ड की स्थापना तारीख 30-07-1961 को बृहद मुंबई स्थानकवासी जैन महासंघ के नेतृत्व में की गई थी।

धार्मिक शिक्षण बोर्ड ने शुरु में स्थानकवासी जैन धर्म के 32 आगम से प्रेरित होकर, आगम सागर से मंथन करके, सरल भाषा में जैनों के, जैन धर्म आधारित ज्ञान को विकसित करने के लिए कक्षा 1 से 7 के लिए पाठयपुस्तकें तैयार की, ताकि इसे सरल भाषा में पढाया जा सके। इस पाठयक्रम को तैयार करने में पूज्य संत-सतीजीओं का अविस्मरणीय सहयोग प्राप्त हुआ।

धीरे-धीरे संघ के दूरदर्शी लोगों ने पाठयक्रम को विकसित किया। जिसके कारण आज बाल पाठावली एवं एक से पच्चीस श्रृंखला के पाठयक्रम तैयार हो गए हैं। आवश्यकता पडने पर नए संस्करण में परिवर्तन भी किए गए हैं। इसलिए अब हम कुछ बदलावों के साथ नये स्वरूप में इस पुस्तक को पुनःप्रकाशित कर रहे हैं। इसके पीछे उद्देश्य यह है कि सभी युवा, बच्चे और वृध्ध इसमें शामिल हो सकें और

अधिक से अधिक संख्या में लोगों को परमात्मा के धर्म से अवगत कराया जा सके।

समय के अनुसार क्रमिक विकास करते-करते आज संस्कार सिंचन से युक्त भावी पीढी के निर्माण के लिए धार्मिक शिक्षण बोर्ड कार्य कर रहा है।

पाठयक्रम तैयार करने में अनेक कल्याणकारी गुरु भगवंतों, गुरुणी भगवंतों का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। उस मार्गदर्शन के अनुसार अभ्यासु श्रावक श्राविकाओं ने अपना योगदान दिया हैं। हम उन सभी का अभिवादन करते हैं।

इस पाठयक्रम के कारण अब तक लाखों लोग परीक्षा के माध्यम से जैन धर्म के संस्कार को प्राप्त कर चुके हैं और भविष्य में भी अधिक से अधिक लोग इस पाठयक्रम से जुड़कर, संस्कार प्राप्त करके अपना भविष्य उज्जवल बनाए यही शुभ भावना और शुभकामनाएँ।

धार्मिक शिक्षण बोर्ड की गतिविधियॉ

1. जैन धर्म के ज्ञान के प्रसार के लिए जैनशाला और महिला मंडल की धार्मिक परीक्षाओं का आयोजन करने वाली संस्था।
2. परीक्षा के लिए आवश्यक पुस्तकों का प्रकाशन।
3. शिक्षकों और छात्रों का सम्मेलन आयोजित करके उन्हें पाठयक्रम की समझ देना।
4. श्रृंखला परीक्षाओं की पुरस्कार सभा आयोजित करना।
5. ज्ञानदाता शिक्षकों का अभिवादन।
6. बाल पाठावली एवं एक से पच्चीस श्रृंखला तक विस्तारित पाठयक्रम उपलब्ध और नई श्रृंखला का विकास।
7. जैन धर्म के गहन ज्ञान के साथ अनुभवी और कुशल ज्ञानदाता द्वारा धार्मिक और आध्यात्मिक शिबिरों एवम् ओनलाइन क्लासीस का आयोजन।
8. Technology के माध्यम से ओनलाइन, ओरल और लिखित परीक्षा हर साल जनवरी और जुलाई में आयोजित की जाती है।
9. वैश्विक परीक्षा का आयोजन, ओनलाइन प्रमाण पत्र और पुरस्कार वितरण।

इस पुस्तक में छद्मस्थ अवस्था के कारण जिनाज्ञा के खिलाफ कुछ भी लिखा गया हो, तो मिच्छामि दुक्कडम्।

अनुक्रमणिका

श्रेणी 5

	अंक	पृष्ठ क्रमांक
सूत्र विभाग	30	1 से 20
तत्व विभाग - संस्कार विभाग	50	21 से 60
कथा विभाग	10	61 से 73
काव्य विभाग	10	74 से 81

श्रेणी 6

सूत्र विभाग	30	83 से 88
तत्व विभाग - संस्कार विभाग	50	89 से 132
कथा विभाग	10	133 से 142
काव्य विभाग	10	143 से 147

अभ्यासक्रम : श्रेणी 5

पृष्ठ

1. सूत्र विभाग - गुण 30

1. संपूर्ण सामायिक, प्रतिक्रमण सूत्र पाठ, अर्थ, प्रश्नोत्तर, पुनरावर्तन 1
2. प्रतिक्रमण: नववे व्रत के पाठ से मांगलिक तक के पाठ के अर्थ और प्रश्नोत्तर

2. तत्व विभाग / संस्कार विभाग - गुण 50

1. कर्म प्रकृति, कर्म स्वरूप और कर्म की अवस्था (गुण 25) 21
2. छह आरे के भाव (कालचक्र) (गुण 20) 42
3. पू. साधु - साध्वीजी को गौचरी बोहराने की समझ और सचेत अचेत की समझ (गुण 05) 58

3. कथा विभाग - गुण 10

1. भगवान ऋषभदेव 61
2. कामदेव श्रावक 68
3. दो कछुए 71

4. काव्य विभाग - गुण 10

1. साधु वंदना (1 से 77 कडी) 74

શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી જૈન મહાસંઘ સંચાલિત

દર્શન જ્ઞાન ચારિત્ર

માતુશ્રી મણિબેન મણશી ભીમશી છાડવા

ધાર્મિક શિક્ષણ બોર્ડ

प्रतिक्रमण पाठ 14 : सामायिक व्रत

प्र-1 : साधु की और श्रावक की सामायिक में क्या अंतर है?

उ-1 : (1) साधु की सामायिक आजीवन होती है, जबकि श्रावक की सामायिक कुछ समय (जैसे दो घड़ी, चार घड़ी आदि) के लिए होती है।

(2) साधु की सामायिक 3 करण और 3 योग, इस प्रकार 9 कोटि से ली जाती है। जबकि श्रावक की सामायिक सामान्यतः 2 करण और 3 योग से यानी 6 कोटि से या 8 कोटि से ली जाती है।

अपेक्षित प्रश्न:

1. सावद्य योग किसे कहते हैं?
2. नववे व्रत के अतिचार कितने होते हैं? कौन-कौन से?
3. सामायिक कितने प्रकार की होती है?
4. पहला शिक्षाव्रत कौन-सा है?

प्रतिक्रमण पाठ 15 : देशावगासिक व्रत

प्र-1 : देशावगासिक व्रत किसे कहते हैं?

उ-1 : पहले लिए गए सभी व्रतों में जो मर्यादाएँ आजीवन के लिए ली थीं, उन्हें संक्षिप्त करके और भी अधिक मर्यादा प्रतिदिन के लिए लेना - देशावगासिक व्रत कहलाता है।

प्र-2 : वर्तमान समय में यह व्रत संक्षेप में किस प्रकार किया जाता है?

उ-2 : वर्तमान में यह व्रत चौदह नियमों के रूप में किया जाता है:

1. सचित खाए-पिए जाने वाली वस्तुओं की मर्यादा।
2. कुल खाद्य-पेय द्रव्यों की मर्यादा।
3. विगय -दूध, दही, घी, तेल, गुड़, चीनी, मिठाई आदि की मर्यादा।
4. स्नान - स्नान की संख्या और उसमें उपयोग किए जाने वाले जल की मर्यादा।
5. जूते/चप्पल आदि की संख्या की मर्यादा।

6. दिशा - चारों दिशाओं में आवागमन की मर्यादा।

7. शयन- सोने-बैठने हेतु पलंग, सोफ़ा, कुर्सी आदि की मर्यादा।

8. ब्रह्मचर्य- यथाशक्ति पालन करना।

9. कुसुम- फूल और सुगंधित द्रव्यों की मर्यादा।

10. विलेपन- शरीर पर लगाने वाले क्रीम, पाउडर, तेल आदि की मर्यादा।

11. वाहन- उपयोग में लिए जाने वाले वाहनों की संख्या की मर्यादा।

12. वस्त्र- प्रतिदिन उपयोग में लिए जाने वाले वस्त्रों की मर्यादा।

13. भोजन- दिन में कितनी बार और कितना आहार लेना है, उसकी मर्यादा।

14. मुखवास- मुखवास के कितने प्रकार और कितनी मात्रा उपयोग करनी है, उसकी मर्यादा।

उपर्युक्त धारणा के अनुसार पच्चक्खाण के शब्द - दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, तस्स भंते, पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

प्र-3 : छठे व्रत और दसवें व्रत में क्या अंतर है?

उ-3 : छठे व्रत में दिशा की मर्यादा का आजीवन पच्चक्खाण (प्रतिज्ञा) किया जाता है। जबकि दसवें व्रत में केवल एक दिन और एक रात्रि के लिए दिशा तथा भोग-उपभोग की मर्यादा की जाती है।

अपेक्षित प्रश्न:

(1) दसवें व्रत के अतिचार कितने होते हैं? कौन-कौन से?

(2) दसवा व्रत कितनी कोटि से ग्रहण किया जाता है?

(3) एक अहोरात्रि का समय कितना होता है?

(4) मुनि जीवन का अनुकरण करने वाला व्रत कौन-सा है?

(5)दसवा व्रत लेने और समापन की विधि क्या है? (प्रतिक्रमण पुस्तक के आधार पर तैयार करें)

(6) दूसरा शिक्षाव्रत कौन-सा है?

प्रतिक्रमण पाठ 16: परिपूर्ण पौषधव्रत

प्र-1 : पौषधव्रत क्या है?

उ-1 : आत्मा को ज्ञान, दर्शन और चारित्र द्वारा पुष्ट करना – यही पौषधव्रत है।

प्र-2 : प्रतिलेखन और प्रमार्जन क्या है?

उ-2 : वस्त्र आदि उपयोग में आने वाले सभी उपकरणों में कोई जीव है या नहीं, इसका निरीक्षण करना "प्रतिलेखन" है। यदि जीव दिखे तो उसे जतनापूर्वक, हल्के हाथों से पूंजनी या रजोहरण द्वारा सुरक्षित स्थान पर रखना "प्रमार्जन" है।

प्र-3: पौषधव्रत या दशवे व्रत में किन-किन वस्तुओं का प्रतिलेखन/ प्रमार्जन करना चाहिए?

उ-3: क्रमशः - मुहपत्ती, गुच्छा, रजोहरण, वस्त्र, संस्तारक, पौषधशाला, परठनेकी भूमि, बैठने की भूमि, गोचरी पात्र, पुस्तक आदि सभी उपयोग में ली जाने वाली वस्तुओं का प्रतिलेखन करना चाहिए।

प्र-4 : पौषधव्रत में किन-किन बातों के पच्चक्खाण किए जाते हैं?

उ-4 : चारों प्रकार के आहार, अब्रह्म सेवन न करना, आभूषण और सोना साथ में न रखना, फूलों की माला न पहनना, चंदन आदि का विलेपन न करना, शस्त्र आदि से होनेवाले 18 प्रकार के पापकारक कार्यों का त्याग - इन सभी का पच्चक्खाण किया जाता है।

प्र-5 : प्रहर किसे कहते हैं? पौषधव्रत कितने प्रहर का होता है?

उ-5 : प्रहर अर्थात दिन या रात्रि का चौथा भाग (लगभग से तीन घंटे)। इसे पोरसी भी कहते हैं। पूर्ण पौषध आठ प्रहर का होता है। केवल रात्रि का पौषध चार प्रहर का होता है।

अपेक्षित प्रश्न:

1. यह व्रत कितनी कोटि से ग्रहण किया जाता है?
2. एकादश (11वें) व्रत के अतिचार कितने और कौन-कौन से हैं?
3. 11वां व्रत कितने समय या कितने प्रहर के लिए लिया जाता है?
4. तृतीय शिक्षाव्रत कौन-सा है?

प्रतिक्रमण पाठ 17: अतिथि संविभाग व्रत

प्र-1 : अतिथि संविभाग व्रत क्या है?

उ-1 : गृहस्थ अपने उपयोग की भोजन आदि 14 प्रकार की वस्तुएँ, जिनका आनेका कोई निश्चित समय या तिथि नहीं है, ऐसे पंचमहाव्रती साधु-साध्वियों को केवल आत्मकल्याण की भावना से अर्पित करें- यही अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है। हर श्रावक को इस व्रत का लाभ प्राप्त करने की भावना हररोज रखनी चाहिए।

प्र-2 : पडिहारी और अपडिहारी वस्तुएँ किसे कहते हैं?

उ-2 : जिन वस्तुओं को साधु-साध्वी ग्रहण करने के बाद वापिस नहीं करते उन्हें "अपडिहारी" कहते हैं। जिन वस्तुओं को ग्रहण कर अपने ऊपयोग में लेने के बाद लौटा देते हैं - उन्हें "पडिहारी" कहते हैं।

प्र-3 : साधु-साध्वीजी को कितनी वस्तुएँ बहराई (दी) जा सकती हैं? इनमें पडिहारी और अपडिहारी वस्तुएँ कौन-कौन सी हैं?

उ-3 : साधु-साध्वीजी को 14 प्रकार की वस्तुएँ दी जा सकती हैं।

अपडिहारी वस्तुएँ (8):

1. आहार	3. मेवा-मिठाई	5. वस्त्र	7. कंबल
2. पानी	4. मुखवास	6. पात्र	8. रजोहरण

पडिहारी वस्तुएँ (6):

1. बाजोट, पाटला आदि	3. शय्या, मकान	5. औषध
2. पाट, पाटिया	4. संस्तारक	6. भेषज

प्र-4 : औषध और भेषज में क्या अंतर है?

उ-4 : सूंठ, हल्दी, आंवला, हरड़े, लौंग आदि एक-एक द्रव्य को "औषध" कहते हैं। हींगाष्टक चूर्ण, त्रिफला आदि अनेक द्रव्यों से बनी वस्तु को "भेषज" कहते हैं।

प्र-5 : क्या साधु-साध्वीजी को दी जाने योग्य वस्तुएँ केवल 14 ही हैं?

उ-5 : ये 14 वस्तुएँ मुख्यतः साधु-साध्वियों के दैनिक उपयोग में आने वाली होने से इनका उल्लेख किया गया है।

इनके अतिरिक्त धर्म उपयोगी पुस्तकें, सुई, कैंची आदि उपयोगी वस्तुएँ भी समझनी चाहिए।

प्र-6 : क्या केवल साधु-साध्वी ही दान के सुपात्र हैं?

उ-6 : साधु-साध्वीजी को दान देना "सुपात्रदान" कहलाता है, इसलिए इस व्रत में उसका विशेष उल्लेख किया गया है।

इसके अलावा प्रतिमाधारी श्रावक, व्रती श्रावक, और स्वधर्मी को भी दान दिया जा सकता है।

इनके अलावा दिए जाने वाला दान "अनुकम्पा से दिया गया दान" कहलाता है।

प्र-7 : तीर्थंकर को 14 दान में से कितने और कौन से दान दिए जाते हैं?

उ-7 : तीर्थंकर वस्त्र, पात्र, कंबल और रजोहरण नहीं रखते, इसलिए इन 4 को छोड़कर बाकी के 10 दान उन्हें दिए जा सकते हैं।

प्र-8 : बारहवाँ व्रत धारण करने वाले को मुख्यत: किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

उ-8 : 1. रसोई बनाने वाले और भोजन करने वाले को - सचित्त वस्तुएँ दूर रखकर बैठना चाहिए।

2. घर में सचित और असचित वस्तुओं को अलग-अलग रखने की व्यवस्था होनी चाहिए।

3. कच्चे पानी के छींटे, हरी वनस्पति, सब्जी का कचरा - ज़मीन पर फैला न हो।

4. यदि असचित पानी बनाया हो, तो उसे शाम तक रखना चाहिए।

5. गौचरी के समय घर के दरवाज़े खुले रखने का विवेक रखना चाहिए।

6. स्वयं सूझता हो तो अपने हाथों से बहराने की उत्कृष्ट भावना रखें।

7. गौचरी विधि की जानकारी साधु-साध्वीजी से प्राप्त कर, उसमें वृद्धि करते रहें।

8. स्वयं सूझते हो या सूझते न हो, जो हो वही सत्य बोलें।

अपेक्षित प्रश्न:

1. करण और कोटि के बिना लिया जाने वाला व्रत कौन सा है?
2. बारहवें व्रत के अतिचार कितने हैं? कौन-कौन से हैं?
3. बारहवें व्रत में किस भावना का चिंतन किया जाता है?
4. चौथा शिक्षाव्रत कौन सा है?

12 व्रत और संथारा के करण योग और कोटी को समझाता हुआ कोष्टक

व्रत	करण	योग	कोटी	विगत
1	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
2	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
3	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
4	2	3	6	देवता संबंधी, दुविहं, तिविहेणं
	1	1	1	मनुष्य,तिर्यच संबंधी, एगविहं, एगविहेणं
5	1	3	3	एगविहं, तिविहेणं
6	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
7	1	3	3	एगविहं तिविहेणं
8	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
9	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
10	2	3	6	दिशा संबंधी, दुविहं, तिविहेणं
	1	3	3	उवभोग परिभोग संबंधी, एगविहं, तिविहेणं
11	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
12	0	0	0	करण, कोटी बिना का व्रत
संथारो	3	3	9	तिविहं, तिविहेणं

प्रतिक्रमण सूत्र: पाठ 18: संथारा अनशन

प्र-1 : मरण किसे कहते हैं? इसके मुख्य प्रकार कितने हैं?

उ-1 : आयुष्य कर्म के पूर्ण होने के बाद आत्मा का शरीर से अलग होना या शरीर में से प्राण का निकलना उसे 'मरण' कहते है।

शास्त्रों की अपेक्षा से मरण के दो प्रकार है - **(1) सकाम मरण :** समकित के साथ होनेवाला ज्ञानी का मरण। **(2) अकाम मरण :** मिथ्यात्व के साथ होनेवाला अज्ञानी का मरण।

व्रत की अपेक्षा से मरण के तीन प्रकार है - **(1) बाल मरण :** अविरति जीवों का मरण, **(2) बाल पंडित मरण :** देशविरति श्रावक का मरण, **(3) पंडित मरण :** सर्वविरति साधु का मरण।

प्र-2 : अनशन यानी क्या? संलेखना यानी क्या? संलेखना कब की जाती है?

उ-2 : अनशन यानी यावत् जीवन प्रत्याख्यान पूर्वक आहार-पानी का त्याग करना। बारह प्रकार के तप में प्रथम तप अनशन है।

संलेखना यानी अनशन धारण करने से पहले की पूर्व तैयारी करना। संलेखना अनशन धारण करने से पहले जघन्य 6 महीने और उत्कृष्ट 12 साल पहले कर सकते है। व्यवहार में अनशन के लिए संलेखना या संथारा शब्द का प्रयोग होता है।

प्र-3: संथारा यानी क्या?

उ-3: संथारा यानी अनशन। 3 या 4 प्रकार के आहार का यावत् जीवन [या थोड़े समय] के लिए त्याग करना।

प्र-4: संथारे में कौन-कौन से पच्चक्खाण किए जाते है? यह बताते मूल पाठ के शब्द लिखें।

उ-4: संथारे में 18 पाप, 4 आहार और 1 शरीर के त्याग रूप 23 पच्चक्खाण किए जाते हैं। मूलपाठ, सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि... से...इमं सरीरं, तक।

प्र-5: संथारे का महत्व क्या है?

उ-5 : संथारा **(1)** श्रावक और साधु का तीसरा मनोरथ है। **(2)** श्रावक का चौथा आश्रय स्थान है। **(3)** पाप का प्रायश्चित है। **(4)** सकाम मरण और पंडित मरण है।

प्र-6: संथारा कब किया जाता है?

उ-6 : जब शरीर धर्माराधना करने के लिए सक्षम न हो, शक्तियाँ क्षीण हो गई हो, शरीर में असाध्य रोग उत्पन्न हुए हो, या मारणांतिक उपसर्ग आते है तब संथारा किया जाता है। जैसे आनंद श्रावक का अनशन।

प्र-7 : संथारा लेने की विधि क्या है?

उ-7 : (1) पौषधशाला पूंजकर और लघुनीत, बडीनीत की जगह देखकर और पूंजकर बिस्तर करना। फिर...

(2) पूर्व तथा उत्तर दिशा में मुख रखकर, पर्यकासन (पालथी मारकर) या अनुकुल आसन पर बैठकर, बाया घुटना खडा करके, दो हाथ जोडकर तीन नमोत्थुणं- सिद्ध भगवंत को, अरिहंतदेव को और धर्मगुरु को करना है। फिर...

(3) पू. साधु-साध्वीजी या अनुभवी श्रावक-श्राविका के समक्ष अपने बारह व्रतों में लगे अतिचारों की निष्कपट आलोचना करके प्रायश्चित्त ग्रहण करना। फिर...

(4) तिन आहार या चार आहार, अठारह पाप और शरीर का तीन करण और तीन योग याने नौ कोटि से त्याग करना। इसके लिए पाठ के इन शब्दों "सव्वं पाणाईवाईयं... से लेकर, विहरामि" यहाँ तक का पाठ बोलकर संथारे के पच्चक्खाण एक-एक दिन उस में बढ़ाते जाना या जाव जीवन के किए जाते है।

यदि पू. साधु-साध्वीजी या श्रावक का संयोग न मिले तो स्वयं आलोचना करके संथारा ग्रहण कर सकते हैं। यदि पानी का आगार रखना है तो संथारा ग्रहण करते समय 'पाणं' शब्द नहीं बोलना। गादी, पलंग आदि का आगार संथारा करने से पहले निश्चित कर लेना होता है। गृहस्थों की सेवा की छूट होती है।

प्र-8: संथारा कितनी कोटि का होता है? कौन कौनसी? बताईए...

उ-8: तीन करण: (1) मैं स्वयं सावद्य योग करुं नहीं, (2) कराउ नहीं, (3) अनुमोदना करुं नहीं। **तीन योग:** (1) मन, वचन और काया। 3 करण X 3 योग = 9 कोटि से अनशन के पच्चक्खाण किए जाते है। नौ कोटी इस प्रकार हैं: (1) स्वयं करुं नहीं, वह करण और मन से वह योग, (2) मन से कराऊं नहीं और (3) मन से अनुमोदु नहीं, (4) करुं नहीं वचन से, (5) कराऊं नहीं वचन से और (6) अनुमोदु नहीं वचनसे, (7) काया से करुं नहीं, (8) काया से कराऊं नहीं और (9) काया से अनुमोदु नहीं। इस प्रकार नौ कोटि हुई।

प्रश्न-9: संथारा ग्रहण करने से पूर्व इस जीवन में जीव ने शरीर को क्या मानकर उसे संभाला ? या अनशन के पाठ में शरीर के लिए कौन से शब्दों की उपमा दी है?

उ-9 : (1) इट्ठं = इष्टकारी, (2) कंतं = कांत, सुंदर, (3) पियं = प्रिय, (4) मणुन्नं = मनोज्ञ, (5) मणामं = मन को अत्यंत प्रिय, (6) धीज्जं = धैर्यरूप, (7) विसासियं = विश्वास करने योग्य, (8) समयं = सम्मत्, मानने योग्य, (9) अणुमयं = विशेष मानने योग्य (10) बहुमयं = सबके द्वारा मानने योग्य, (11) भंड करंडग समाणं = आभूषण रखने की पेटी समान, (12) रयण करंडग भूयं = रत्नों की पेटी समान।

संथारा ग्रहण करने से पहले जीवने शरीर को इस प्रकार का मानकर उसे संभाला होता है। इस प्रकार कुल 12 शब्दों द्वारा शरीर को उपमा दी गई है।

प्र-10: संथारा धारण करने से पहले इस जीवन में जीव ने शरीर को कैसे उपसर्गों और परिषहों से बचाया है?

उ-10: शरीर पर आनेवाले उपसर्गों - परीषह आदि का निर्देश 'माणं सीयं से परीसहोवसग्गा' शब्दों से किया है, जैसे ठंडी, गर्मी, भूख, प्यास, साँप का काटना, चोर आदि का डर, डाँस की कांट, मच्छर की कांट, वात, पित्त, कफ, त्रिदोष, विविध रोग आदि उपसर्ग - परीषहों से शरीर को बचाया है।

प्र-11: संथारे के मुख्य प्रकारों को संक्षेप में बताएँ।

उ-11 : संथारे के तीन मुख्य प्रकार हैं - **(1)** भक्त प्रत्याख्यान संथारा, **(2)** इंगित मरण संथारा, **(3)** पादपोपगमन संथारा। इसकी समझ इस प्रकार है।

भक्त प्रत्याख्यान संथारा	इंगित मरण संथारा	पादपोपगमन संथारा
1. तिविहार या चौविहार करके	केवल चौविहार	केवल चौविहार
2. क्षेत्र मर्यादा करना जरूरी नहीं है।	मर्यादित क्षेत्र में हलनचलन इंगित -मर्यादित सीमा की छुट	शरीर हलनचलन न करें। पादप+उपगमन= वृक्ष की टुटी डाली की तरह शरीर को सूखाना।
3. चतुर्विध संघ आराधना कर सकता है।	चतुर्विध संघ आराधना कर सकता है।	चतुर्विध संघ आराधना कर सकता है।
4. वर्तमान में होता है।	वर्तमान में नहीं होता।	वर्तमान में नहीं होता।
5. वैयावच्च भी कराते हैं।	वैयावच्च नहीं कराते।	वैयावच्च नहीं कराते।

प्र-12: हमेशा रात को संलेखना (सागारी संथारा) कैसे किया जाता है?

उ-12: रात को सोते समय सागारी (आगार सहित) संथारा किया जाता है। उसके पच्चक्खाण इस प्रकार लेने होते है।

"आहार शरीर और उपधि, पच्चक्खुं पाप अट्ठार,
मरण आवे तो वोसिरे, पारुं तो बोली एक नवकार"

प्र-13: सागारी संथारा कौन कौन से समय कर सकते है? किस तरह?

उ-13 : सागारी (आगार सहित) संथारा हररोज रात को सोते समय, संकट के समय, रोग के समय, ऑपरेशन के समय, भय का प्रसंग हो, अचानक कहीं भी मृत्यु का उपसर्ग आया हो, ऐसा लगे तब कर सकते है। जहां उपसर्ग आता है, वहां की भूमि को पूंजकर संथारे का "नमोत्थुणं से विहरामि'' (विहरीस्सामि) तक पाठ बोला जाता है। फिर ऊपर बताया है, वैसे सागारी संथारे के पच्चक्खाण लिए जाते है।

प्र-14: संथारे से क्या लाभ होता हैं?

उ-14 : अनशन समाधि मरण है। उस से **(1)** श्रावक के तीसरे मनोरथ की आराधना होती है। **(2)** श्रावक के चौथे आश्रय स्थान की आराधना होती है। **(3)** प्रथम बाह्य तप की आराधना होती है। **(4)** करोड़ों भवों के कर्म की निर्जरा होती हैं। **(5)** भविष्य के अनंत बाल मरणों से मुक्ति मिलती हैं। **(6)** परभव में उच्च गति या मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र-15: किस तिर्यंच ने संथारे की आराधना की थी?

उ-15: छठे अंग सूत्र श्री ज्ञाताधर्मकथा के तेरहवें अध्ययन में नंद मणियार के जीव ने 'मेंढक' के भव में और कथा में उल्लेख है कि चंडकौशिक सर्प ने संथारे की आराधना की थी।

प्र-16: उपाश्रय का दूसरा नाम प्रतिक्रमण के किस पाठ में कैसे बताया गया है?

उ-16: संथारा पाठ में "पौषधशाला पूंजकर" शब्द से उपाश्रय का दूसरा नाम 'पौषधशाला' बताया गया है।

प्र-17: क्या संथारा करना वह आपघात या आत्मघात है?

उ-17: नहीं, मृत्यु का समय नजदीक जानकर, व्रत, प्रत्याख्यान से शुद्ध बनकर, सारे जीवों के प्रति क्षमाभाव रखकर, शांतिपूर्वक मरने की तैयारी करना संथारा है। संथारा स्वनिर्णय है। संथारे में अवगुणों की घात होती है। आत्मशुद्धि होती है। संथारा समाधि मरण है। शूरवीरों की आराधना है। अप्रमाद की साधना है और प्रायश्चित की पुनीतगंगा में स्नान है। यह संसार को कम करता है और उच्च गति देता है। इसलिए इसे आपघात नहीं कहते।

लेकिन जब कोई शारीरिक, मानसिक पीड़ा या बीमारी से घबराकर, सही-गलत का विचार किए बिना, सोचे समझे बिना मरण करते है तो वह आपघात है। आपघात कषाय के कारण होता है। लज्जा, निराशा, मोह या राग-द्वेष से ग्रहित होकर जीव आत्मघात रूप कायर काम करता है।

प्र-18: संथारा सहित पंडित मरण किसे आता है?

उ-18: ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की उत्तम आराधना करने वाले साधु या श्रावक को आता है।

प्र-19: पंडित मरण का फल कितना है?

उ-19: मिथ्यात्वी के अनंता बाल मरण से एक पंडित मरण उच्च है, बड़ा है। श्रावक

के बाल पंडित मरण से एक पंडित मरण बड़ा है, उच्च है। संयम जीवन का सार भी पंडित मरण है। पंडित मरण ऐसा उत्तम है, इसलिए साधु का भी तीसरा मनोरथ पंडित मरण है।

प्र-20: श्रावक व्रत के अतिचार कितने है? कौन-कौन से? वह अतिचार आचरण करने योग्य है?

उ-20: श्रावक के बारह व्रत के अतिचार 99 है। ज्ञान के 14, दर्शन के 5, चरित्र के 75 और तप के 5। यह 99 अतिचार जानकर मात्र छोड़ने योग्य है, पर आचरण करने योग्य नहीं।

अपेक्षित प्रश्न :-

1. प्रतिक्रमण में रणसंग्राम का, शूरता का, वीरता का और धीरता का पाठ कौन सा है?
2. पाप का पसारा समेट ने का पाठ कौन सा है?
3. परमगति या सद्गति का रिजर्वेशन का पाठ कौन सा है?
4. संथारे के पाठ में किस-किस को नमस्कार है?
5. संथारा में चक्रवर्ती बनने की भावना करें तो कौन सा अतिचार लगता है?
6. तप के अतिचार कौन से पाठ में है?

पाठ 19: अठारह पापस्थानक

प्र-1 : 18 पापों में सबसे बड़ा पाप कौन सा है? क्यों?

उ-1 : अठारवा पाप 'मिथ्यादर्शन शल्य' यह सब से बड़ा पाप है। जब तक मिथ्यात्व के पाप का संपूर्ण त्याग ना हो तब तक... प्रथम के 17 पापों का पूर्ण त्याग नहीं हो सकता, इसलिए अठारवा पाप सब से बडा है।

प्र-2 : 'पाप स्थान' ऐसा क्यों कहा जाता है?

उ-2 : जिस कर्म के फल आत्मा को भुगतने कड़वे लगते हैं, वह पाप है। इन पापों के उत्पत्ति के जो स्थान है, वह पापस्थान है। ऐसे पापस्थान 18 है। उनका आचरण करने से बहुत अशुभ कर्मों का बंध होता है। आत्मा नरक, तिर्यच आदि दुर्गति में जाती है।

प्र-3 : परिग्रह और लोभ में क्या अंतर है?

उ-3 : प्राप्त वस्तु का संग्रह करना, नई वस्तुओं को ग्रहण करना और उसके प्रति ममत्व भाव रखना वह परिग्रह है। अप्राप्त वस्तु की इच्छा, प्राप्त वस्तु छोड़ने का भाव

ना रखना वह लोभ है।

प्र-4 : सात कुव्यसन के नाम क्या है?

उ-4 : सात कुव्यसन के नाम: **1.** मदिरापान (दारू) **2.** माँसाहार **3.** जुआ, **4.** चोरी, **5.** शिकार **6.** परस्त्रीगमन **7.** वैश्यागमन

प्र-5 : सात कुव्यसनों का कौन-कौन से पापों में समावेश हो जाता है?

उ-5 : प्राणातिपात में मदिरापान, माँसाहार, शिकार। अदत्तादान में चोरी। मैथुन में परस्त्रीगमन, वैश्यागमन और परिग्रह में जुआ।

प्र-6 : सात कुव्यसनों से कैसे अनर्थ परिणाम आते हैं?

उ-6 : (1) मदिरापान: मदिरापान करने से आर्थिक नुकसान, शारीरिक नुकसान, मानसिक बीमारी, परिवार में संबंध खराब होते है, कुल को कलंक लगता है, नशे में अनैतिक कृत्य हो जाते हैं। **(2) माँसाहार:** माँसाहार से नरकगति के आयुष्य का बंध होता है, पंचेन्द्रीय की हिंसा होती है, जैन धर्म की हिलना होती है, खानदानी लज्जास्पद बनती है, क्रुरता के कुसंस्कार आते हैं। **(3) जुआ:** जुआ खेलने से धन संपत्ति खत्म हो जाती है, खराब मित्रों की संगत बढ़ती है, दारू-चोरी जैसे दूसरें व्यसन जीवन में प्रवेश करते हैं, पसीने की कमाई पाप में बह जाती है। **(4) चोरी:** चोरी से अपयश फैलता है, अविश्वास बढ़ता है, तिर्यंचगति का आयुष्य बंध होता है, और अनीति से आए धन से प्रमाणिकता से आया धन भी चला जाता है, चोरी पकड़ी जाती है तो अपयश होता है और जेल आदि दंड मिलते हैं, इस भव में बच गए तो परभव में कर्म के फल तो भुगतने ही पडते हैं। **(5) शिकार:** शिकार से नरक गति के आयुष्य का बंध होता है, असाता वेदनीय कर्म का तीव्र बंध होता है, परभव में अशुभ दीर्घ आयुष्य का बंध होता है, एक जीव लेने के बदले में अनंत मौत हमें मरना पड़ता है। **(6) परस्त्रीगमन:** परस्त्रीगमन करने से श्रावकत्व शर्मसार होता है, जैनत्व की निंदा होती है, अपने परिवार में संबंध खराब होते है, परस्पर अविश्वास बढ़ता है और तलाक की नौबत आती है, यह भव बिगड़ता है, संतानों के भविष्य भी बिगड़ते हैं। **(7) वैश्यागमन:** अब्रह्म के घोर, भयानक, दुखद परिणाम भुगतने पड़ते हैं, नरक, तिर्यंच आदि दुर्गति होती है, संसार बढ़ता है, यह भव-परभव दोनों बिगड़ते हैं, मानवभव का खराब उपयोग करने से भविष्य में मानवभव मिलना अति दुर्लभ हो जाता है।

प्र-7 : 18 पाप के भंग (भेद) कितने? कैसे?

उ-7 : 18 पाप को करना, करवाना, अनुमोदन करना, इन तीनों का गुणाकार 18 × 3 = 54 होते है। इन 54 को मन, वचन, काया से 54 × 3 = 162 भेद हुए।

प्र-8 : 18 पाप में से मन, वचन और काया के पाप कौन-कौन से?

उ-८ :

18 पाप	मन	वचन	काया
1. प्राणातिपात	x	x	हा
2. मृषावाद	x	हा	x
3. अदत्तादान	x	x	हा
4. मैथुन	x	x	हा
5. परिग्रह	x	x	हा
6. क्रोध	हा	x	x
7. मान	हा	x	x
8. माया	हा	x	x
9. लोभ	हा	x	x
10. राग	हा	x	x
11. द्वेष	हा	x	x
12. कलह	x	हा	x
13.अभ्याख्यान	x	हा	x
14. पैशुन्य	x	हा	x
15. पर परिवाद	x	हा	x
16. रइ-अरइ	x	x	हा
17. मायामोसो	x	हा	x
18. मिच्छादंसणसल्लं	हा	x	x

सब मिलाके 18 पाप 7 + 6 + 5

प्रश्न-9: प्रतिक्रमण में पापस्थान का वर्णन क्यों दिया गया है?

उ-9 : पाप का स्वरूप समझे बिना उसका त्याग करना कैसे शक्य होगा!!! इसलिए 18 पाप को जानकर, उसकी आलोचना करके, उसे छोड़ने के लिए प्रतिक्रमण में उसका वर्णन दिया गया है।

अपेक्षित प्रश्न :-

1. जैसा करे वैसा भरे वह पाप कौन सा? (अभ्याख्यान)
2. दो पाप इकट्ठा होकर कौन सा पापस्थान बनता है? (मायामोसो)
3. प्यारे लगे वह पाप कौन से?
4. सच बोले फिर भी कौन सा पाप लगता है?
5. सब से बड़ा पाप कौन सा?
6. विरासत में कौन सा पाप मिलता है?

पाठ 20: पच्चीस प्रकार के मिथ्यात्व

प्र-1 : मिथ्यात्व यानी क्या?

उ-1 : तत्व की झूठी मान्यता को मिथ्यात्व कहते हैं। दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से जीव अजीव आदि नव तत्व में श्रद्धा न होना, सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में कम, अधिक या विपरित श्रद्धा होना यह मिथ्यात्व है।

प्र-2 : जीव को अजीव श्रद्धे यह मिथ्यात्व यानी क्या?

उ-2 : जीव को न मानना। जैसे - पृथ्वी, पानी, वनस्पति, अंडे या संमूर्च्छिम में जीव न मानना।

प्र-3 : अजीव को जीव श्रद्धे यह मिथ्यात्व यानी क्या?

उ-3 : दहीं, थूंक, पसीना आदि अजीव को जीव मानना।

प्र-4 : धर्म को अधर्म श्रद्धे यह मिथ्यात्व कैसे?

उ-4 : केवली प्ररूपित सूत्र और सिद्धांत को मिथ्या समझना या छद्मस्थ ने रचना की है ऐसा समझना। धर्म के उपकरण जैसे रजोहरण, गुच्छा, वस्त्र, पात्र आदि को परिग्रह मानना। अभयदान, सुपात्रदान को अधर्म मानना।

प्र-5 : अधर्म को धर्म श्रद्धे यह मिथ्यात्व कैसे?

उ-5 : केवली के सिवा अन्य किसी के प्ररूपित अन्य ग्रंथो को धर्मशास्त्र मानना। राग, द्वेष, विषय और विकार बढ़ाने वाले मिथ्या वचनों को भगवान के वचन मानना।

प्र-6 : साधु को कुसाधु श्रद्धे यह मिथ्यात्व किस तरह?

उ-6 : जो पांच महाव्रत के पालक हैं, पाँच समिति और तीन गुप्ती से युक्त है, जिनकी श्रद्धा और प्ररूपणा केवली प्ररूपित धर्म की है, वैसे सच्चे साधु को कुसाधु मानना।

प्र-7 : कुसाधु को साधु मानना यह मिथ्यात्व कैसे?

उ-7 : जो पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ती रहित है, जिनकी श्रद्धा - प्ररूपणा केवली ने बताए हुए धर्म की नहीं है किंतु वेश से साधु है, ऐसे कुसाधु को साधु मानना।

प्र-8 : जिन मार्ग को अन्य मार्ग माने यह मिथ्यात्व कैसे?

उ-8 : सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप आदि द्वारा धर्म न मानना। संवर, निर्जरा, दान, शील, तप और भाव आदि को संसार का मार्ग मानना।

प्र-9 : अन्य मार्ग को जिन मार्ग माने वह मिथ्यात्व कैसे?

उ-9 : झूठी श्रद्धा, अंधश्रद्धा, झूठा ज्ञान या असत्य आचरण को धर्म का मार्ग मानना। संसार की वृद्धि करानेवाले यज्ञ आदि हिंसा के कारण को मोक्ष के हेतु मानना।

प्र-10: आठ कर्म से मुक्त को अमुक्त मानना यह मिथ्यात्व कैसे?

उ-10: सिद्ध भगवंत जिन्हों ने आठों कर्मों का क्षय कर अजर, अमर ऐसे मोक्ष पद को प्राप्त किया है, फिर भी ऐसा मानना वे कर्म सहित है और संसार में फिर से जन्म लेंगे या कर्म का नाश होते ही आत्मा का नाश हो जाता है। इसलिए लोकाग्र भाग में कोई सिद्ध है ही नहीं ऐसा मानना।

प्र-11: आठ कर्म से मुक्त नहीं, उन्हें मुक्त श्रद्धे यह मिथ्यात्व कैसे ?

उ-11: राग-द्वेष युक्त जो धर्मगुरु, धर्मदेव लोगों के द्वारा माने जाते हैं, जिनके एक भी कर्म अभी टूटे नहीं (क्षय नहीं हुए) उन्हें कर्म मुक्त, जन्म-मरण से मुक्त मानना।

प्र-12: जिन मार्ग से कम, अधिक और विपरीत प्ररूपणा किसे कहते हैं ?

उ-12: जिन मार्ग से कम यानी आत्मा को अंगूठा प्रमाण, चावल प्रमाण माने वह। आत्मा को संपूर्ण ब्रह्मांड (लोक) में व्याप्त मानना यह अधिक प्ररूपणा है। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और आकाश यह पंच महाभूत से जीव उत्पन्न होता है, ऐसा मानना आदि यह विपरीत प्ररूपणा है।

अपेक्षित प्रश्न :-

1. नीचे दिए गए कर्म करने से कौन सा मिथ्यात्व लगता है?

(क) शीतला सप्तमी करें।

(ख) मेरा काम होगा तो छट्ठ करूँगी ऐसा धारे।

(ग) भगवान के मार्ग के विरोधी बने।

(घ) नरक है कि नहीं है, ऐसी शंका करना।

(ङ) एकेंद्रीय की नासमझ।

(च) ज्ञानी होकर दुखी होना उससे, ना पढ़ना अच्छा, ऐसा मानना।

(छ) गुरु आज्ञा का जानबूझकर भंग करना।

2. सबसे बड़ा मिथ्यात्व कौन सा?

पाठ 21: चौदह स्थान के संमूर्च्छिम मनुष्य

प्र-1 : संमूर्च्छिम जीव किसे कहते हैं?

उ-1 : जो जीव माता-पिता के संयोग बिना, गर्भ बिना अपने आप उत्पन्न होते हैं उसे संमूर्च्छिम जीव कहते हैं। सर्व एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेंन्द्रिय और असंज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय जीव संमूर्च्छिम जीव कहे जाते हैं।

प्र-2 : गर्भज किसे कहते हैं? वे संज्ञी है या असंज्ञी?

उ-2 : जो जीव माता-पिता के संयोग से गर्भ में उत्पन्न होते हैं, उसे गर्भज कहते हैं। संज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय तथा संज्ञी मनुष्य गर्भज होते हैं। वह संज्ञी यानी की मन वाले होते हैं।

प्र-3 : देवता और नारकी के जीव गर्भज है कि संमूर्च्छिम?

उ-3 : देवता उपपात शय्या में और नारकी कुंभि में जन्म लेते हैं। इसलिए उनको गर्भज या संमूर्च्छिम नहीं कहते है, उसे उपपातिक (औपपातिक) जीव कहते हैं।

प्र-4 : संमूर्च्छिम मनुष्य यानी क्या ? वे संज्ञी हैं या असंज्ञी ?

उ-4 : जो पंचेन्द्रिय मनुष्य (1) माता-पिता के संयोग बिना, (2) 101 क्षेत्र के संज्ञी मनुष्य के शरीर की 14 प्रकार की अशुचि में, (3) अपने आप स्वयं (सहज) उत्पन्न हो जाते है, उसे संमूर्च्छिम मनुष्य कहा जाता है। संमूर्च्छिम मनुष्य असंज्ञी यानी बिना मनवाले होते है।

प्र-5 : मनुष्य के शरीर की अशुचि में कितने, कहाँ और कब संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं?

उ-5 : मनुष्य के अशुचि की एक बूँद या कण में असंख्य संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। शरीर की अशुचि शरीर के अपने मूल उत्पत्ति स्थान से बाहर निकल जाने के

बाद अंतर्मुहूर्त में संमूर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्ति हो जाती है।

प्र-6 : संमूर्च्छिम मनुष्य को पर्याप्ति कितनी होती है? क्या हम उन्हें देख सकते हैं?

उ-6 : संमूर्च्छिम मनुष्य प्रथम पाँच पर्याप्ति बाँधने की शुरूआत एक साथ करते है। लेकिन चौथी श्वासोच्छवास नाम की पर्याप्ति बाँधना पूरा करने से पहले ही अपर्याप्त अवस्था में उनकी मृत्यु हो जाती है। इसलिए उन जीवों के शरीर इतने छोटे - सूक्ष्म होते हैं कि हम उन्हें अपनी आँखों से नहीं देख सकते।

प्र-7 : संमूर्च्छिम मनुष्य का आयुष्य कितना होता है और उन्हें कितनी इन्द्रियाँ होती हैं?

उ-7 : संमूर्च्छिम मनुष्य का आयुष्य अंतर्मुहूर्त का और इन्द्रियाँ पाँच होती है।

प्र-8 : असंज्ञी पंचेन्द्रिय में किस-किस का समावेश किया गया है?

उ-8 : असंज्ञी पँचेंद्रिय में संमूर्च्छिम मनुष्य और जलचर, स्थलचर, उरपर, भूजपर और खेचर ये पाँच असंज्ञी तिर्यंच पँचेन्द्रिय का समावेश किया गया हैं।

प्र-9 : नीचे दिए गए बोलो में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं या नहीं ?

1. मच्छर के लहू में 2. जुगलिया मनुष्य के मूत्र में 3. कुत्ते की उल्टी में 4. अपने पसीने में 5. साधु के मृतदेह में 6. बिल्ली की विष्टा में 7. हमारी थूंक में 8. महाविदेह के मनुष्य की अशुचि में 9. कान के मेल में 10. लघुनीत परठकर भाजन गिला रख दिया हो उस में ?

उ-9 : (2) जुगलिया मनुष्य के मूत्र में (5) साधु के मृतदेह में (8) महाविदेह के मनुष्य की अशुचि में (10) लघुनीत परठकर भाजन गिला रख दिया हो उस में... इन बोलो में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं। (1) मच्छर के लहू मे (3) कुत्ते की उल्टी में (4) हमारे पसीने में (6) बिल्ली की विष्टा में (7) हमारी थूंक में (9) कान के मेल में। इन बोलो में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न नहीं होते।

प्र-10: तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अशुचि जैसे कि विष्टा, वमन, गोबर आदि में कौन से जीव उत्पन्न होते हैं?

उ-10: संमूर्च्छिम मनुष्य तो मात्र संज्ञी मनुष्यों की अशुचि में ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अशुचि में मात्र विकलेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं।

प्र-11: 14 संमूर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्तिस्थान की सामान्य समझ दीजिए।

उ-11: (1) पहला उच्चारेसु वा... से सुक्केसु वा ये नव मुख्य अशुचि स्थान है।

(2) दसवे नंबर में शुक्र के पुद्गल सूख गये हो और वह वापस गीले होते है तो उस में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। (3) 11 वे में मनुष्य के मृतदेह में उच्चारेसु वा... आदि प्रथम नव अशुचि होती है, उस हर एक में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। एक ही मृतदेह में अनेक अशुचि होती है। उस हर एक में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। (4)12 वा स्त्री-पुरुष के संयोग में स्त्री के रुधीर में और पुरुष के वीर्य/ शुक्र के संयोग में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। (5)13 वे और 14 वे बोल में भी उच्चारेसु वा आदी प्रथम 9 अशुचि इकट्ठी होती हैं, तो ही संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। इस प्रकार 14 स्थान में प्रथम दस संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होने के एकेक स्थान है और 11 से 14 ये प्रथम दस के संयोगी स्थान है।

प्र-12: प्रतिक्रमण में संमूर्च्छिम मनुष्य का पाठ क्यों बोला जाता हैं?

उ-12: अपने शरीर में से मल मूत्र आदि अशुचि के जो 14 स्थान संमूर्च्छिम के पाठ में बताए है, वह पूरे दिनभर निकलते रहते है। उस अशुचि को हमें खुली जगह में त्याग करना चाहिए। जिससे वह जल्दी सुख जाए और उस में जीव उत्पन्न न हो सकें। संमूर्च्छिम जीवों की हिंसा के पाप को दूर करने के लिए और पाप की परंपरा को तोडने के लिये यह पाठ बोलने में आता है।

प्र-13: संमूर्च्छिम मनुष्य की दया पालने हेतु आप क्या ध्यान रखेंगे?

उ-13: (1) संडास, बाथरूम का उपयोग कम करेंगे। (2) गटर में पानी आदी अशुचि न जाए उसका ध्यान रखेंगे। (3) खुल्ली जगह की सुविधा हो तो भाजन का उपयोग करेंगे। जिस जगह सूर्य की धूप, हवा आती हो तो अशुचि जल्दी सूख जाए वैसे परठेंगे। (4) रस्ते पर कफ आदि नहीं थूकेंगे। (5) नीचे देखकर चलेंगे जिससे कफ आदि पर पैर न पड़ें। (6) छोटी सामान्य बिमारी में ब्लड, युरिन का टेस्ट नहीं करवाएँगे। (7) ब्लडबँक आदि के लिए ब्लड इकट्ठा करना आदि प्रवृत्ति में भाग नहीं लेंगे। (8) सामायिक और प्रतिक्रमण के समय अशुचि त्याग करने की जरूर पडे तो बाथरूम का उपयोग नहीं करेंगे। भाजन का उपयोग करेंगे और खुली जगह में अशुचि परठेंगे।

अपेक्षित प्रश्न :-

1. प्रतिक्रमण में नपुंसकवेद का पाठ कौन सा है?

2. गंदगी में उत्पन्न होनेवाला मनुष्य कौन है?

3. छोटे से छोटा आयुष्य वाला मनुष्य कौन?

4. क्या मक्खी मनुष्य को खाती है? किस तरह?

5. नीचे दी हुई अशुचि में कौन से बोल के जीव उत्पन्न होते है?

(क) मल/मूत्र तपास ने (टेस्टिंग) के लिए दे उस में।

(ख) ब्लडबँक में लहु (खुन, ब्लड) इकट्ठा करें उस में।

(ग) मृत मनुष्य के शरीर में

(घ) कफ आदि गटर में थूंके तो ?

(ङ) उलटी करें उसमें?

(च) जखम में से निकलते मवाद में?

(छ) कुत्ते की विष्ठा में?

पाठ 22: मांगलिक

प्र-1 : मंगल यांनी क्या?

उ-1 : (1) जिसके द्वारा 'मम्' अर्थात् मद, अभिमान और 'गल' अर्थात्, गल जाना है, वह शुभ यांनी मंगल है। (2) जो सभी प्राणियों के कल्याण/ हित के लिए प्रयास करते हैं वे मंगल हैं। (3) जो सभी दुर्भाग्य और अन्य परेशानियों को दूर करता है। (4) जो जीवको संसार सागर से पार करवाए वह मंगल हैं।

प्र-2 : सर्वश्रेष्ठ/ उत्तम किसे माना जाता है? सर्वश्रेष्ठ/ उत्तम कितने और कौन से हैं?

उ-2 : श्रेष्ठ वह है जो अनंतकाल से भटकते हुए भव्य आत्माओं को उन्नति के मार्ग पर ले जाए। चार सर्वश्रेष्ठ, उत्तम, मंगल अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म हैं।

प्र-3 : भव्य जीवों के लिए अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म का स्वरूप कैसा है?

उ-3 : इन सब का स्वरूप मंगलकारी और कल्याणकारी है। उत्तम और सर्वोत्तम है। शरणदाता और सुखदाता है।

प्र-4 : अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म ही हमारे लिए मंगल रूप क्यों है?

उ-4 : भगवान अरिहंत ने घाती कर्म क्षय करके, सिद्ध भगवान ने आठों कर्मों को क्षय करके, साधु भगवान ने संयम तप का पालन करके अपनी आत्मा को मंगल

कर लिया है। केवली प्ररूपित धर्म के आचरण से ही हम धर्मी, त्यागी, वीतरागी और सिद्ध बन सकते हैं। इसलिए यह मंगल स्वरूप है।

प्र-5 : अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म हमारे लिए उत्तम क्यों हैं?

उ-5 : अरिहंत भगवान 12 गुणों, ३४ अतिशय, 1008 लक्षणों से उत्तम हैं। सिद्ध भगवान ने मोक्ष का अनंत सुख प्राप्त किया है इसलिए वे उत्तम हैं। साधु - साध्वी पांच महाव्रतों, अष्ट प्रवचन माता का पालन करने से 27 गुणों से उत्तम हैं। केवली प्ररूपित धर्म-श्रुतधर्म, चारित्रधर्म, जिनवाणी उत्तम हैं क्योंकि ये सर्व दुखों से मुक्त कराने वाले हैं।

प्र-6: अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म किस प्रकार हमारे लिए शरणरूप हैं? उनके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है?

उ-6 : मंगलकारी और उत्तम अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म का शरण लेना यही हमारा कर्तव्य है।

(1) अरिहंत का शरण लेने के लिए तीर्थंकर भगवान की आज्ञा का पालन करना।

(2) सिद्ध का शरण लेने के लिए आत्मार्थी बन मोक्षमार्ग की आराधना करके सिद्ध बनने का लक्ष्य रखना।

(3) साधु-साध्वी का शरण लेने के लिए सच्चे श्रावक बनना।

(4) केवली प्ररूपित धर्म का शरण लेने के लिए कुधर्म को त्याग कर सुधर्म, श्रावकधर्म, साधुधर्म की आराधना करना। इन चार शरण को प्रतिदिन अंगीकार करना और यह जानकर कि मृत्यु का समय निकट है, इनका प्रगटरूप से उच्चारण करना।

अपेक्षित प्रश्न :-

(1) विश्व में कितने शरण हैं? कौन-कौन से?

(2) जगत में मंगल कितने है ? कौन-कौन से?

(3) देव, गुरु और धर्म का वर्णन किस पाठ में होता है?

(4) चार शरण का फल क्या है?

कर्म स्वरूप, कर्म प्रकृति तथा कर्म अवस्था

1. कर्म स्वरूप

जैनदर्शन कहता है कि- इस सृष्टि, शरीर और संयोगो की विषमता का यदि कोई मुख्य कारण है, तो वह कर्म है। कोई भी कार्य बिना कारण के उत्पन्न नहीं होता। कर्म के फलस्वरूप ही पुनर्जन्म-भवपरम्परा की प्राप्ति होती है। कर्मबंध के अभाव और कर्म से पूर्ण मुक्ति से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र-1 : कर्म यांनी क्या ? इसकी परिभाषा लिखिए।

उ-1 : 'क्रियते इति कर्म:।' क्रिया करने से जो बंधते है वह कर्म है।

मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग के कारण जो आत्मा के साथ बँधते है उसे 'कर्म' कहते हैं। जब जीव राग या द्वेष करता है, तब जीव के अवगाहित आकाश प्रदेश में रहे हुए कार्मण वर्गणा के अनंता अनंत सूक्ष्म स्कंध लोहचुंबक की तरह आकर्षित होते हैं और आत्म प्रदेश के साथ चिपक जाते हैं, इसे 'कर्म' कहा जाता है।

वर्गणा का अर्थ है लोक में विशिष्ट पुद्गलों का समूह। वर्गणा अनंत प्रकार की हैं। उनमें से आठ प्रकार की वर्गणा जीव ग्रहण कर सकता हैं। उसके नाम हैं: (1) औदारिक, (2) वैक्रिय, (3) आहारक, (4) तैजस, (5) श्वासोच्छवास, (6) भाषा (7) मन (8) कार्मण वर्गणा।

प्र-2 : जीव और कर्म का संबंध कैसा और कब से है?

उ- 2 : जैसे लोहे के गोले को आग में डालते ही उसके अणु-अणु में अग्नि का प्रवेश होता है, जैसे दूध और पानी एक हो जाते हैं, वैसे ही आत्म प्रदेश और कर्मपुद्गल का संबंध होता हैं।

जीव और कर्म का यह संबंध अनादिकाल से है। सोने की खान में सोने और मिट्टी की तरह। मिट्टी कब सोने में मिल गई, पता ही नहीं चला। इस प्रकार जीव और कर्म का संबंध भी अनादि से है। उसके परिणाम स्वरूप, उसे 4 गति, 24 दंडक, 84 लाख जीवायोनियों में अनंत जन्म और मरण करने पड़ते है।

प्र-3 : क्या जन्म-मरण के इस चक्र को रोका जा सकता है? इसे क्या कहते हैं?

उ-3 : जब जीव में विवेक प्रकट हो जाता है, तब जन्म-मरण रूपी संसार से मुक्त होने के लिए सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपरूप मोक्षमार्ग का आश्रय लेकर पुरुषार्थ करता है, तब वह कर्मो रूपी मल को नष्ट कर देता है और शुद्ध सोने की तरह निर्मल हो जाता है। वह निर्मल आत्मा लोक के अग्रभाग में स्थिर हो जाता है, उसे ही मोक्ष कहते हैं। वही आत्मा परमात्मा बन जाता है। शुद्ध आत्मा को फिर कभी भी कर्म बंध नहीं होता और जन्म-मरण भी नहीं करने पड़ते।

प्र-4 : कर्म कितने प्रकार के होते हैं? कौन कौन से?

उ-4 : कर्म के दो मुख्य प्रकार हैं: **(1) द्रव्य कर्म:** जीव के राग-द्वेष रूप परिणाम विशेष से लोक में ठुस-ठुस के भरी हुई कार्मण वर्गणा के पुद्गल आत्मा के साथ जुडते है उसे 'द्रव्य कर्म' कहा जाता है। **(2) भाव कर्म:** जीव के राग-द्वेष रूप परिणाम, जिससे द्रव्य कर्म बँधते है, उसे 'भाव कर्म' कहते है।

अन्य दृष्टि से भी कर्म दो प्रकार के होते हैं: **(1) घाती कर्म:** जो कर्म आत्मा के मूल गुणों जैसे ज्ञान, दर्शन, वीतरागता आदि गुणों की घात (आवरण) कर देते है उसे घाती कर्म कहते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय ये चार घाती कर्म हैं। **(2) अघाती कर्म:** जो कर्म आत्मा के ज्ञान आदि मूल गुणों की घात नहीं करते और मूल गुणों को प्रकट होने में बाधक नहीं बनते, उसे अघाती कर्म कहते हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र ये चार अघाती कर्म हैं।

घाती कर्म के नष्ट होने के बाद अघाती कर्म लंबे समय तक नहीं टिकते। आयुष्य पूर्ण होते ही शेष तीन अघाती कर्म क्षय हो जाते हैं, फीर जीव कर्म रहित बनकर सिद्ध हो जाता है।

प्र-5 : जैन दर्शन के अनुसार कर्म सिद्धांत की विशिष्टता समझाइए।

उ-5 : जैनदर्शन के आगम - श्री उत्तराध्ययन सूत्र में तीन बातें स्पष्ट रूप से समझाई गई हैं: **(1)** आत्मा के अपने राग-देष के परिणाम स्वरूप कर्म का निर्माण होता है। **(2)** कर्म कर्ता का ही अनुसरण करते है। **(3)** कर्म भुगते बिना जीव का मोक्ष नहीं होता।

कर्म का कर्ता और भोक्ता जिस प्रकार जीव है, उसी प्रकार कर्म का संहारक (क्षय करने वाला) भी जीव है। इसलिए कर्म से मुक्त होने के लिए कर्म प्रकृतियाँ और उसका बंध किस प्रकार होता है, यह जानना आवश्यक है।

कर्म प्रकृति

श्री पन्नवणा सूत्र पद 23, उ. 1 और श्री भगवती सूत्र शतक 8, 9

आठ कर्मों के नाम:

(1) ज्ञानावरणीय कर्म, (4) मोहनीय कर्म, (7) गोत्र कर्म,
(2) दर्शनावरणीय कर्म, (5) आयुष्य कर्म, (8) अंतराय कर्म।
(3) वेदनीय कर्म, (6) नाम कर्म,

आठ कर्मो के लक्षण

(1) पहला ज्ञानावरणीय कर्म आँख पर बँधी पट्टी के समान।
(2) दूसरा दर्शनावरणीय कर्म राजा के द्वारपाल के समान।
(3) तीसरा वेदनीय कर्म शहद से लिपटी तलवार के समान।
(4) चौथा मोहनीय कर्म (मदिरा पान) शराब पीने के समान।
(5) पाँचवां आयुष्य कर्म बेडी के समान।
(6) छट्ठा नाम कर्म चित्रकार के समान।
(7) सातवा गोत्र कर्म कुम्भकार के चाक के समान।
(8) आठवा अंतराय कर्म राजा के खजाँची के समान।

आठ कर्मों ने कौन से गुण को रोका/ढंक दिया है?

(1) ज्ञानावरणीय कर्म ने अनंत ज्ञान गुण को ढंक दिया है।
(2) दर्शनावरणीय कर्म ने अनंत दर्शन गुण को ढंक दिया है।
(3) वेदनीय कर्म ने अनंत अव्याबाध आत्मिक सुख गुण को रोक दिया है।
(4) मोहनीय कर्म ने वीतरागता गुण को रोक दिया है।
(5) आयुष्य कर्म ने अक्षय स्थिति गुण को रोक दिया है।
(6) नाम कर्म ने अमूर्त गुण को रोक दिया है।
(7) गोत्र कर्म ने अगुरु-लघु गुण को रोक दिया है।
(8) अंतराय कर्म ने अनंतवीर्य गुण को रोक दिया है।

आठ कर्मों का स्वरूप, आठ कर्म कितने प्रकार से बंधते हैं? कितने प्रकार से भुगतने पड़ते हैं?

आठ कर्मों की स्थिति, ये सब का विस्तार

1. ज्ञानावरणीय कर्म का विस्तार:

ज्ञानावरणीय कर्म छह प्रकार से बंधते है।

(1) नाण पडिणियाए - ज्ञान और ज्ञानी के अवर्णवाद बोलने से।

(2) नाण निन्हवणियाये - ज्ञान देनेवालों का उपकार भूलना, जिनसे ज्ञान प्राप्त हुआ है उसका नाम छुपाना।

(3) नाण अंतरायेणं - ज्ञान प्राप्ति में बाधा (अंतराय) डालना।

(4) नाण आसायणाए -ज्ञान और ज्ञानी की अशातना करना।

(5) नाण पओसेणं - ज्ञान, ज्ञानी या ज्ञान के उपकरणों पर द्वेष करना।

(6) नाण विसंवायणाजोगेणं - ज्ञानी से मिथ्या विवाद, क्लेश, झगड़ा करना।

ज्ञानावरणीय कर्म पाँच प्रकार से भुगतने पड़ते हैं।

(1) मतिज्ञानावरणीय - पाँच इंद्रियों और मन के माध्यम से किसी वस्तु का जो यथार्थ ज्ञान होता है, वह मतिज्ञान है। उस पर आवरण वह मतिज्ञानावरणीय।

(2) श्रुत ज्ञानावरणीय - शब्द द्वारा होता हुआ अर्थ का यथार्थ ज्ञान या सूत्र सिद्धांत का ज्ञान वह श्रुत ज्ञान है। उस पर आवरण वह श्रुतज्ञानावरणीय।

(3) अवधि ज्ञानावरणीय - आत्मा द्वारा रूपी द्रव्यों का जो सीमित यथार्थ ज्ञान होता है उसे अवधिज्ञान कहते है। उस पर आवरण वह अवधिज्ञानावरणीय।

(4) मन:पर्यव ज्ञानावरणीय - ढाईद्विप में रहने वाले संज्ञी जीवों के मन के भावों को जानने वाला ज्ञान वह मन:पर्यवज्ञान है। उस पर आवरण वह मन:पर्यवज्ञानावरणीय।

(5) केवल ज्ञानावरणीय - संपूर्ण लोकालोक में रहनेवाले सर्व द्रव्य के, सभी गुणों को, सभी पर्यायों को, आत्मा द्वारा एक साथ, एक समय में जाने वह केवलज्ञान कहलाता है। उस पर आवरण वह केवलज्ञानावरणीय।

ज्ञानावरणीय कर्म दस प्रकार से भुगता जाता है।

(1) श्रोत्र आवरण - शब्द का ज्ञान नहीं होता, कान में सुनने की शक्ति नहीं मिलती इस कारण शब्द सून नहीं सकते।

(2) श्रोत्रविज्ञान आवरण - शब्द का ज्ञान है पर विशेष ज्ञान नहीं होता जैसे कि कौन बुला रहा हैं आदि।

(3) नेत्र आवरण - रूप-रंग का ज्ञान नहीं होता, आँख न मिलने के कारण देख नहीं पाते।

(4) नेत्र विज्ञान आवरण - आँख से दिखाई दे परंतु विशेष ज्ञान नहीं होता। देखकर पता नहीं चल पाता कि कौन सा व्यक्ति या वस्तु है, वह तय नहीं कर पाते।

(5) घ्राण आवरण - गंध की अनुभूति न होना, नाक न होने के कारण सूंघने में सक्षम न होना।

(6) घ्राणविज्ञान आवरण - नाक से सूंघने से भी इस बात का विशेष ज्ञान नहीं होता कि किस वस्तु की गंध है।

(7) रस आवरण - रस का ज्ञान न होना। जीभ न होने के कारण स्वाद नहीं ले पाते।

(8) रसविज्ञान आवरण - स्वाद तो आ सकता है लेकिन किसका स्वाद इसका विशेष ज्ञान नहीं होता।

(9) स्पर्श आवरण - स्पर्श का एहसास न होना, जैसे पक्षाघात।

(10) स्पर्शविज्ञान आवरण - स्पर्श का ज्ञान होता है लेकिन विशिष्ट ज्ञान नहीं होता है कि किसका स्पर्श है? जिस प्रकार कोई अंध व्यक्ति स्पर्श से पहचान सकते है, उस प्रकार नहीं पहचान सकते।

ज्ञानावरणीय कर्म की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीस क्रोडाक्रोडी सागरोपम की। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार साल का।

समझ : कर्म बंधन के बाद जब तक फल देने के लिए उदय में नहीं आते और वह कर्म सत्ता में बने रहे, तब तक की अवधि को कर्म का 'अबाधाकाल' कहा जाता है। जिस कर्म की जितने क्रोडाक्रोडी सागरोपम की स्थिति बनती है, उतना ही 100 वर्ष का अबाधाकाल बंधता है। जैसे 10 क्रोडाक्रोडी सागरोपम की स्थिति का अबाधाकाल 10 X 100 यांनी 1000 वर्ष का अबाधाकाल। जिस कर्म की स्थिति 1 क्रोडकोडी सागरोपम के अंदर बँधती है, उसका अबाधाकाल अंतर्मुहूर्त का होता है।

2. दर्शनावरणीय कर्म का विस्तार

दर्शनावरणीय कर्म छह प्रकार से बंधता है।

(1) दंसण पडिणियाए - चक्षु, अचक्षु, अवधि या केवल ये चार दर्शन या उस दर्शन के धारक के अवर्णवाद बोलने से।

(2) दंसण निन्हवणियाए - दर्शन और दर्शनी के उपकार भूलने से।

(3) दंसण अंतरायेणं - दर्शन और दर्शनी के चश्मा आदि साधनो में अंतराय डालने से।
(4) दंसण आसायणाए - दर्शन और दर्शनी की अशातना करने से।
(5) दंसण पओसेणं - दर्शन और दर्शनी के उपर द्वेष करने से।
(6) दंसण विसंवायणाजोगेणं - दर्शनी के साथ झूठे झगड़े, विवाद करने से।

दर्शनावरणीय कर्म को नौ प्रकार से भुगता जाता है।

(1) निद्रा - वह सुख से सोता है, सुख से जागता है।
(2) निद्रा निद्रा - वह दुख के साथ सोता है, दुख के साथ जागता है।
(3) प्रचला - वह बैठे-बैठे सोता है।
(4) प्रचला प्रचला - वह बात करते करते, चलते-चलते सोता है।
(5) थिणद्धि (स्त्यानर्द्धि) निद्रा - दिन के दौरान सोचे हुए साधारण या असाधारण कार्य नींद में करना थिणद्धि निद्रा है। जब थिणद्धि निद्रा के कर्म का उत्कृष्ट उदय आता है, तब वज्रऋषभनाराच संघयण वाले जीव में वासुदेव का आधा बल आ जाता है। यदि कोई ऐसी नींद में आयुष्य का बंध करता है, तो वह जीव मरने के बाद नरक में जाता है। यह बात उत्कृष्ट बल की है। जघन्य और मध्यम बल भी हो सकता है और यदि उस में आयुष्य का बँध पड़े तो किसी भी गति में जा सकता है।
(6) चक्षु दर्शनावरणीय - आँख के माध्यम से किसी वस्तु का सामान्य बोध वह चक्षुदर्शन है। उस पर आवरण।
(7) अचक्षु दर्शनावरणीय - आँख के अलावा अन्य चार इंद्रियों और मन के माध्यम से किसी वस्तु के बारे में सामान्य बोध अचक्षु दर्शन है, उस पर आवरण।
(8) अवधि दर्शनावरणीय - आत्मद्रव्य के माध्यम से सीमित क्षेत्र में रहे हुए रूपी द्रव्यो का सामान्य ज्ञान अवधिदर्शन है, उस पर आवरण। अवधिज्ञान या विभंगज्ञान से पहले होने वाले सामान्य ज्ञान के उपर आवरण।
(9) केवल दर्शनावरणीय - संपूर्ण लोकालोक के सर्व द्रव्यों का सामान्य बोध होना वह केवलदर्शन, उस पर आवरण।

दर्शनावरणीय कर्म की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीस क्रोडाक्रोडी सागरोपम की। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष।

(जैसे ठंडी में घी जम जाता है, उसे हम थिणुं घी कहते हैं, वैसे ही निद्रा के उदय में चेतना जम जाती है, चेतना घनीभूत हो जाती है, उसे थिणद्धि निद्रा कहते हैं।)

3. वेदनीय कर्म का विस्तार

वेदनीय कर्म के दो भेद- (1) साता वेदनीय - जिससे सुख का वेदन होता है।

(2) असाता वेदनीय - जिससे दुख का वेदन होता है।

वेदनीय कर्म 22 प्रकार से बांधा जाता हैं, उसमें सातावेदनीय 10 प्रकार से बांधा जाता है।

(1) पाणाणुकंपयाए (प्राणी अनुकंपा) - दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौरेंद्रिय, (विकलेन्द्रिय) जीवों पर दया/अनुकंपा करने से। **(2) भूयाणुकंपयाए (भूत अनुकंपा) -** वनस्पति के जीवों पर अनुकंपा करने से। **(3) जीवाणुकंपयाए (जीव के प्रति दया) -** पंचेन्द्रिय जीवों के प्रति दया रखने से। **(4) सत्ताणुकंपयाए (सत्त्व की करुणा) -** चार स्थावर (पृथ्वी, अप, तेउ, वाउ.) जीवों पर दया करने से। बहुणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं - बहुत सारे छकाय जीवों को। **(5) अदुखणयाए -** दुख न देने से। **(6) असोयणाए -** शोक न कराने से। **(7) अझुरणयाए -** नहीं तडपाने से, झुरणा या वियोग न कराने से। **(8) अटिप्पणयाए -** बूँद-बूँद आँसू न गिरवाने से। **(9) अपिट्टणयाए -** मार, पिटाई न करने से **(10) अपरियावणयाए -** परिताप या यातना न देने से।

असातावेदनीय कर्म 12 प्रकार से बंधते है।

(1) परदुखणयाए - कोई एक प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व को कष्ट देने से। **(2) परसोयणयाए -** छकाय जीवो को शोक कराए। **(3) परझुरणाए -** तड्पावे, झुरणा या वियोग कराए। **(4) परटिप्पणयाए -** बूँद-बूँद आँसू गीरवाने से। **(5) परपिट्टणयाए -** उसे मारे, पीटे। **(6) परपरियावणियाए -** जीव को परिताप या यातना देने से। बहुणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं - अनेक छकाय जीवों को, **(7) दुक्खणयाए -** कष्ट देवे। **(8) सोयणयाए -** शोक कराए। **(9) झुरणयाए -** तडपाये, झूरणा कराए या वियोग कराए। **(10) टीप्पणयाए -** रुलाए, बूँद-बूँद आँसू गिरवाए। **(11) पिट्टणयाए -** मारे, पीटे। **(12) परियावणयाए -** पीड़ा/ परिताप या यातना देवे।

वेदनीय कर्म की 16 प्रकृति, उस में साता वेदनीय की 8 और असाता वेदनीय की 8, इस प्रकार वेदनीय कर्म 16 प्रकार से भुगतने पड़ते है।

सातावेदनीय कर्म आठ प्रकार से भुगतते है।

(1) मनोज्ञ शब्द - मन को अच्छे लगे, वैसे शब्द सुनने मिले। **(2) मनोज्ञ रूप -** मन को अच्छा लगे, वैसा रूप देखने मिले। **(3) मनोज्ञ गंध -** मन को अच्छी लगे, वैसी सुगंध मिले। **(4) मनोज्ञ रस -** मन को अच्छा लगे, वैसा रस मिले। **(5) मनोज्ञ स्पर्श -** मन को अच्छा लगे, वैसा स्पर्श मिले। **(6) मन सौख्य -** मन का सुख **(7) वचन सौख्य -** वचन का सुख **(8) काया सौख्य -** शरीर/काया का सुख।

असाता वेदनीय कर्म आठ प्रकार से भुगतते है।

(1) अमनोज्ञ शब्द - जो शब्द मन को अच्छे नहीं लगते, वैसे शब्द सुनने को मिलते हैं। **(2) अमनोज्ञ रूप -** मन को अप्रिय रूप देखने मिलता है। **(3) अमनोज्ञ गंध -** मन को अप्रिय दुर्गंध सुंघने मिलती है। **(4) अमनोज्ञ रस -** मन को वह रस मिलता है जो उसे पसंद नहीं है। **(5) अमनोज्ञ स्पर्श -** मन को अप्रिय स्पर्श मिलते है। **(6) मन दुहया -** मन का दुख **(7) वय दुहया -** वचन का दुख **(8) काय दुहया -** शरीर का दुख।

वेदनीय कर्म की स्थिति - साता वेदनीय कर्म की स्थिति ज. दो समय की, उत्कृष्ट 15 क्रोडाक्रोडी सागरोपम की। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देढ़ हजार वर्ष।

असाता वेदनीय कर्म की स्थिति जघन्य एक सागरोपम के सात भाग करे, उसके तीन भाग में एक पल्य का असंख्यातवाँ भाग कम। (3/7 सागरोपम में पल्य का असंख्यातवाँ भाग कम), उत्कृष्ट तीस क्रोडाक्रोडी सागरोपम की। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष।

4. मोहनीय कर्म का विस्तार

मोहनीय कर्म छह प्रकार से बंधते है- (1) तीव्र क्रोध (2) तीव्र मान (3) तीव्र माया (4) तीव्र लोभ (5) तीव्र दर्शन मोहनीय (6) तीव्र चारित्र मोहनीय।

मोहनीय कर्म पाँच प्रकार से (विस्तार से 28 प्रकार) भुगतते है- (1) समकित मोहनीय (2) मिथ्यात्व मोहनीय (3) मिश्र मोहनीय (4) कषाय चारित्र मोहनीय (5) नोकषाय चारित्र मोहनीय। इसकी विस्तार से 28 प्रकृतियाँ हैं।

1. दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृति- (1) सम्यक्त्व मोहनीय - भगवान

की वाणी में श्रद्धा तो है लेकिन उसमें कुछ मलीनता भी होती है। **(2) मिथ्यात्व मोहनीय -** नौ तत्वों में श्रद्धा न होना। सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के प्रति श्रद्धा न रखना। जिनेश्वर भगवंत ने बताए तत्त्व में अरुचि और अतत्त्व में रुचि रखना । **(3) मिश्र मोहनीय -** जिनवाणी में न रुचि, न अरुचि। जिनवाणी सत्य है या अन्यवाणी सत्य है, इसका निर्णय न ले पाना।

2. चारित्र मोहनीय की दो प्रकृतियाँ- (1) कषायचारित्र मोहनीय (2) नोकषाय चारित्र मोहनीय।

1 कषाय चारित्र मोहनीय की सोलह प्रकृतियाँ-

(1) अनंतानुबंधी क्रोध - पर्वत के दरार समान। **(2) अनंतानुबंधी मान -** पत्थर के स्तंभ के समान। **(3) अनंतानुबंधी माया -** बांस की जड़ के समान। **(4) अनंतानुबंधी लोभ -** 'किरमिची'[1] के रंग के समान।

ये चारों, गति नरक की करते है, स्थिति यावत् जीवन की, घात करते समकित की। **(5) अप्रत्याख्यानी क्रोध -** तालाब की दरार के समान। **(6) अप्रत्याख्यानी मान -** हड्डियों के स्तंभ के समान। **(7) अप्रत्याख्यानी माया -** भेड़ के सींग समान। **(8) अप्रत्याख्यानी लोभ -** यह नगर की गटर के कीचड़ समान, ये चारों, गति तिर्यंच की करते है, स्थिति एक वर्ष की, देश विरती यांने श्रावकपने का घात करते है। **(9) प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध -** बालु (नदी की रेत) के बीच एक रेखा की तरह। **(10) प्रत्याख्यानावरणीय मान -** लकड़ी के स्तंभ समान। **(11) प्रत्याख्यानावरणीय माया -** गौमूत्र के समान। **(12) प्रत्याख्यानावरणीय लोभ -** बैलगाडी के खंजन समान। ये चारों, गति मनुष्य की करते है, चार मास की स्थिति होती है, साधुपने का घात करते है। **(13) संज्वलन का क्रोध -** भरती से आए हुए पानी में लकीर (रेखा) के समान। **(14) संज्वलन का मान -** बेंत के स्तंभ समान। **(15) संज्वलन की माया -** बांस की छोई समान। **(16) संज्वलन का लोभ -** तितलियों[2] और हल्दी के रंग समान। ये चारों, गति देव की करते है, पंद्रह दिनों की स्थिति,

---

1. किरमिची के रंग को जलाने पर उसकी राख भी उसी रंग की हो जाती है इतना गहरा रंग।
2. तितली को हाथों से पकड़ा जाए तब उसके पंख का रंग उंगली पर आ जाता है। हलदी के कपड़े को गीला करके धूप में रखने से उस पर लगे दाग उड जाते हैं वैसा।

यथाख्यात चारित्र की घात करते है।

नोकषाय[1] चारित्र मोहनीय की नौ प्रकृति है- (1) हास्य/हँसी - जिसके उदय से जीव कारण या बिना कारण हँसता है। **(2) रति** - जिसके उदय से जीव को सांसारिक और पाप कर्मों में आनंद आता है। **(3) अरति -** जिसके उदय से जीव को धार्मिक कार्यों में आलस्य और कंटाला आता है। **(4) भय -** जिसके उदय से भय/डर लगता है। **(5) शोक -** जिसके उदय से चिंता, उदासी या शोक उत्पन्न होता है। **(6) दुगंछा -** जिसके उदय से जीव को वस्तु या व्यक्ति के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। **(7) स्त्रीवेद -** जिसके उदय से स्त्री को पुरुष समागम की इच्छा होती है। **(8) पुरुष वेद -** जिसके उदय से पुरुष को स्त्री समागम की इच्छा होती है। **(9) नपुंसक वेद -** जिसके उदय से नपुंसक को स्त्री-पुरुष दोनों के समागम की इच्छा होती है।

चारित्र मोहनीय की कुल 16 + 9 = 25 और दर्शन मोहनीय की 3 प्रकृतियाँ कुल 28 प्रकृतियाँ होती हैं।

मोहनीय कर्म की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 70 क्रोडाक्रोडी सागरोपम की। अबाघाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सात हजार वर्ष।

5. आयुष्य कर्म का विस्तार

आयुष्य कर्म सोलह प्रकार से बँधता है।

नरक का आयुष्य चार प्रकार से बँधता है - (1) महा आरंभ (2) महा परिग्रह, (3) कुणिम आहार (दारु - मांस का सेवन) (4) पंचेन्द्रिय जीवों का वध।

तिर्यंच का आयुष्य चार प्रकार से बँधता है - (1) माया करने से (2) गाढ माया करने से। (3) झूठ/असत्य बोलने से (4) गलत तोल - नाप करने से।

मनुष्य का आयुष्य चार प्रकार से बँधता है - (1) भद्र (सरल) प्रकृति (2) विनय प्रकृति (3) शानुकोश: दयाभाव रखने से (4) अमत्सर: अहंकार रहित, तुच्छता रहित होने से।

देवता का आयुष्य चार प्रकार से बँधता है - (1) सराग संयम (सरागी भिक्षुत्व) का पालन करने से (2) संयमासंयम (श्रावकधर्म) का पालन करने से (3) बाल (अज्ञान) तप करने से (4) अकाम निर्जरा करने से।

नोकषाय: नोकषाय वास्तव में कषाय ही है। लेकिन वे स्पष्ट रूप में कषाय लगते नहीं। वे परंपरा से कषाय का कारण है। वे कषाय को उत्तेजित करते है। कषाय के लिए ईंधनरूप है ।

आयुष्य कर्म चार प्रकार से भुगता जाता है- (1) नारकी, नारकी का आयुष्य भुगतते है (2) तिर्यंच, तिर्यंच का आयुष्य भुगतते है (3) मनुष्य, मनुष्य का आयुष्य भुगतते है (4) देव, देव का आयुष्य भुगतते है।

आयुष्य कर्म की स्थिति - नारकी और देव की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट 33 सागर। मनुष्य और तिर्यंच की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 3 पल्य। अबाधाकाल नहीं है।

6. नामकर्म का विस्तार

नाम कर्म के दो भेद, (1) शुभ नाम, (2) अशुभ नाम।
नाम कर्म आठ प्रकार से बँधता है।

शुभनाम कर्म चार प्रकार से बँधता है - (1) काया की सरलता (2) भाषा की सरलता (3) भावों की सरलता (4) अविसंवाद योग : झूठे झगडे, विवाद नहीं करने से।

अशुभनाम कर्म चार प्रकार से बँधता हैं - (1) काया की कुटिलता/ वक्रता (2) भाषा की वक्रता (3) भावों की वक्रता (4) विसंवाद योग: झूठे झगड़े, कलह करने से।

नाम कर्म 28 प्रकार से भुगता जाता है। शुभ नाम कर्म 14 प्रकार से और अशुभ नाम कर्म 14 प्रकार से भुगता जाता है।

शुभ नाम कर्म चौदह प्रकार से भुगता जाता है -

(1) इष्ट शब्द - अच्छे शब्द। स्वयं से बोले गए शब्द दूसरों को सुनना अच्छा लगता है,
(2) इष्ट रूप - सुंदर रूप प्राप्त होता है, (गोरे भी हो और सुंदर भी हो, काला हो, लेकिन रूपवान हो, यानी सुंदर हो)।
(3) इष्ट गंध - सुगंधित शरीर प्राप्त होता है,
(4) इष्ट रस - शरीर के पुद्गल अच्छे रस वाले मिले,
(5) इष्ट स्पर्श - स्वयं का शरीर सुंदर स्पर्श वाला होता है,
(6) इष्ट गति - शरीर की चाल अच्छी हो ,
(7) इष्ट स्थिति - अच्छी शरीर स्थिति प्राप्त करते है(उठना-बैठना),
(8) इष्ट लावण्य - सुंदर शरीर का ओज, काला होने पर भी सलोना लगे,

(9) इष्ट यशोकीर्ति - शरीर के संयोग से विशिष्ट पराक्रम आदि करने से लोगों में यश ख्याति फैलती है।

(10) इष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम - उनका हर कार्य अच्छा लगता है। अच्छी शारीरिक शक्ति प्राप्त करते है। **उत्थान :** काया की चेष्टा/खड़े होना। **कर्म:** आकुंचन प्रसारण। **बल:** शारीरिक शक्ति। **वीर्य:** आत्मा द्वारा निर्मित वीर्य/मानसिक शक्ति। पुरुषाकार **पराक्रम:** कार्य करना।

(11) इष्ट स्वर - मन को अच्छा लगे वैसा स्वर, कंठ मधुर मिलता है।

(12) कांत स्वर - बार-बार सुनने का मन करें ऐसा /कोमल स्वर,

(13) प्रिय स्वर - सामने वाले व्यक्ति को प्रिय लगे ऐसा स्वर।

(14) मनोज्ञ स्वर - सामने वाले व्यक्ति के मन को अच्छा लगे ऐसा स्वर।

अशुभ नाम कर्म चौदह प्रकार से भुगता जाता है - (1) अनिष्ट शब्द - स्वयं द्वारा बोले गए शब्द दूसरे सुनना पसंद नहीं करते **(2) अनिष्ट रूप -** स्वयं को कुरूप शरीर मिलता है, **(3) अनिष्ट गंध -** शरीर से दुर्गंध आती है **(4) अनिष्ट रस -** शरीर के पुद्गल खराब रस वाले होते है **(5) अनिष्ट स्पर्श -** स्वयं का शरीर रुक्ष आदि स्पर्श वाला होता है **(6) अनिष्ट गति -** शरीर की चाल अच्छी न हो **(7) अनिष्ट स्थिति -** शारीरिक स्थिति अच्छी नहीं होती **(8) अनिष्ट लावण्य -**बेडोल या कुरूप शरीर **(9) अनिष्ट यशोकीर्ति -** शरीर के संयोग से लोगों में अपयश और अपकीर्ति मिलती हैं **(10) अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम -** शारीरिक शक्ति खराब मिलती है। उनका हर कार्य खराब लगता है **(11) अनिष्ट स्वर -** ऐसी आवाज जो मन को पसंद नहीं आती **(12) अकांत स्वर -** ऐसी आवाज जिसे दोबारा सुनना अच्छा न लगे **(13) हीन स्वर -** दूसरों से हीन स्वर (मंद स्वर, महीन स्वर) **(14) दीन स्वर -** अप्रभावी, दयनीय आवाज मिलती है।

नाम कर्म की 93 प्रकृतियाँ: 14 पिंडप्रकृति विस्तार से मिलकर 65 प्रकृतियाँ

8 प्रत्येक प्रकृति	8 प्रकृति
त्रस दशक की	10 प्रकृति
स्थावर दशक की	10 प्रकृति
कुल प्रकृति	93

14 पिंड प्रकृति का विस्तार -

(जिस प्रकृति के विशेष विभाग होते है, उसे पिंड प्रकृति कहते है।)

पिंड प्रकृति	उत्तर प्रकृति	पिंड प्रकृति	उत्तर प्रकृति
1. गति नाम	4	8. संस्थान नाम	6
2. जाति नाम	5	9. वर्ण नाम	5
3. शरीर नाम	5	10. गंध नाम	2
4. शरीर अंगोपांग नाम	3	11. रस नाम	5
5. शरीर बंधन नाम	5	12. स्पर्श नाम	8
6. शरीर संघातन नाम	5	13. आनुपूर्वी नाम	4
7. संघायण नाम	6	14. विहायोगति नाम	2

1. गति नाम के चार भेद - (1) नरक की गति (2) तिर्यंच की गति (3) मनुष्य की गति (4) देव की गति। (4)

2. जाति नाम के पाँच भेद - (1) एकेन्द्रिय की जाति (2) दोईन्द्रिय की जाति (3) तेईन्द्रिय की जाति (4) चौरेंन्द्रिय की जाति (5) पंचेन्द्रिय की जाति।

3. शरीर नाम के पांच भेद - शरीर का अर्थ है जो समय-समय पर क्षीण होता है। **(1) औदारिक शरीर:** यह सड़ता है, गिरता है, बिखरता है, क्षत-विक्षत होता है, खराब होता है, मृत्यु के बाद मृतदेह पडा रहता है। उदार का अर्थ है प्रधान। जो तीर्थंकर, गणधर आदि सब को प्रधान ऐसी मोक्ष गति को प्राप्त करने में सहायक बनता है। **(2) वैक्रिय शरीर -** यह सड़ता नहीं है, गिरता नहीं है, बिखरता नहीं है, खराब नहीं होता है, मृत्यु के बाद यह कलेवर, विसराल (कपूर की गोटी के समान) हो जाता है उसे वैक्रिय शरीर कहते है। वैक्रिय का अर्थ है रूप परिवर्तन करने की शक्ति। भिन्न-भिन्न क्रियाओं द्वारा एक, अनेक, छोटे, बड़े, खेचर, भूचर, दृश्य, अदृश्य आदि भिन्न-भिन्न रूप बनाने की शक्ति। इस शरीर में हड्डियाँ, मांस आदि नहीं होते। **(3) आहारक शरीर -** 14 पूर्वी साधु को तप आदि करने से यह लब्धि उत्पन्न होती है। उसके द्वारा उत्तम स्फटिक समान पुद्गल से जो शरीर बनता है, उसे आहारक शरीर कहा जाता है। जघन्य 1 हाथ न्युन, उत्कृष्ट 1 हाथ का शरीर बनाते है। **(4) तैजस शरीर -** जिसके कारण शरीर में उष्णता बनी रहती है और भोजन का पाचन करता है वह तैजस शरीर। तेजोलब्धि से तेजोलेश्या (उष्ण या शीत पुद्गल) को छोड़ने में कारणभूत शरीर को तैजस शरीर कहा जाता है। **(5) कार्मण शरीर -**

जिसमें आठों कर्मों के स्कंध संग्रहित होते हैं, वह कार्मण शरीर। (14)

4. शरीर अंगोपांग के तीन भेद - अंगोपांग : जिस कर्म के उदय से जीव को शरीर के हाथ, पैर, सिर आदि अंग और अंगुलियाँ, नाखून आदि उपांग मिलते हैं। (1) औदारिक शरीर अंगोपांग (2) वैक्रीय शरीर अंगोपांग (3) आहारक शरीर अंगोपांग, (तैजस और कार्मण शरीर सूक्ष्म होने के कारण अंगोपांग नहीं होते।) (17)

5. शरीर बंधन नाम के पांच भेद - बंधन नाम : शरीर के योग्य एकत्रित पुद्गलों को ग्रहण करके शरीर का निर्माण करने हेतु उन्हें जोडना। (1) औदारिक शरीर बंधन (2) वैक्रिय शरीर बंधन (3) आहारक शरीर बंधन (4) तैजस शरीर बंधन (5) कार्मण शरीर बंधन। (22)

6. शरीर संघातन नाम के पांच भेद - संघातन नाम - अलग-अलग शरीर बनाने के लिए उस शरीर योग्य पुद्गल एकत्रित होते हैं वह संघातन नाम है। (1) औदारिक शरीर संघातन (2) वैक्रिय शरीर संघातन (3) आहारक शरीर संघातन (4) तैजस शरीर संघातन (5) कार्मण शरीर संघातन। (27)

7. संघयण (संहनन) नाम के छह भेद - संघयण : शरीर की शक्ति/मजबूती। **(1) वज्रऋषभनाराच संघयण -** वज्र यानी कील, ऋषभ यानी पट्टा, नाराच यानी दोनों बाजू में मर्कटबंध। जिस शरीर की संरचना में दो हड्डियों को दोनों बाजू से मर्कटबंध से बांधा हो, उस पर हड्डियो का पट्टा होता है, उसे कील जैसी हड्डी से मजबूत बांधा हो वैसा मजबूत संघयण। **(2) ऋषभनाराच संघयण -** यह संघयन ऊपर की तरह पर इस में कील नहीं होती। **(3) नाराच संघयण -** इस में दोनों तरफ मर्कटबंध होता है। **(4) अर्धनाराच संघयण -** एक बाजु से मर्कटबंध और दूसरी ओर केवल कील होती है। **(5) किलिका संघयण -** दोनों हड्डियाँ एक कील से जुड़ी होती हैं। **(6) छेवट्टुं (सेवार्त्त) संघयण:** दोनों हड्डियाँ सटी हुई/बाजु-बाजु में होती हैं, कील नहीं होती। (33)

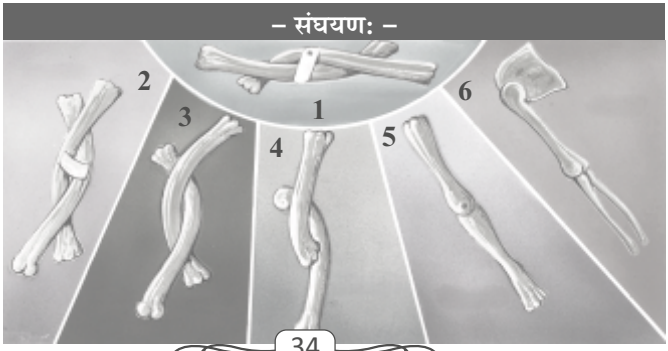

8. संस्थान नाम के छह भेद - संस्थान : आकार। **(1) समचतुरंस्त्र संस्थान -** पैरों से सिर तक सुंदर शरीर। पालथी के साथ बैठी हुई आकृति चारों ओर से एक जैसी, समान है। **(2) न्यग्रोध परिमंडल संस्थान -** कमर से सिर तक शोभायमान शरीर। **(3) सादी संस्थान -** पैरों से कमर तक सुडौल शरीर। **(4) वामन संस्थान -** हाथ, पैर, सिर का आकार नाटा होता है। **(5) कुब्ज संस्थान -** हाथ, पैर, सिर, गर्दन कम-अधिक प्रमाण वाले होते हैं। अन्य अवयव सुंदर होते है। **(6) हुंण्डक संस्थान -** सभी अवयव अशुभ होते हैं। (39)

9. वर्ण के पाँच भेद - जिनके उदय से जीव को भिन्न-भिन्न वर्ण वाला शरीर प्राप्त होता है। (1) काला (2) नीला (हरा) (3) लाल (4) पीला (5) सफेद। (44)

10. गंध के दो भेद - जिसके उदय से जीव के शरीर में भिन्न-भिन्न गंध होती है। (1) सुरभिगंध (2) दुरभिगंध (46)

11.रस के पांच भेद हैं - जिनके उदय से जीव के शरीर में पुद्गलों का विविध रस होता हैं। (1) तीखा (2) कड़वा (3) कषैला (4) खट्टा (5) मीठा। (51)

12. स्पर्श के आठ भेद - जिसके उदय से जीव के शरीर का विभिन्न स्पर्श होता हैं। (1) मुलायम (2) कर्कश (3) हल्का (4) भारी (5) गर्म (6) ठंडा (7) लूखा (8) चिकना। (59)

13. आनुपूर्वी के चार भेद - आनुपूर्वी : जीव जब मृत्यु पा कर अन्य गति में जाता है, तब रास्ते में विग्रहगति में साथ रहता है और मोड लेने में मदद करता है। (1) नरक आनुपूर्वी (2) तिर्यंच आनुपूर्वी (3) मनुष्य आनुपूर्वी (4) देव आनुपूर्वी। (63)

14. विहायोगति नाम के दो भेद - (1) प्रशस्त विहायोगति अर्थात् गंध हस्ति के समान शुभ चलने की गति (2) अप्रशस्त विहायोगति - अर्थात् ऊँट की तरह अशुभ चलने वाली गति। (65)

प्रत्येक प्रकृति 8 - (1) अगुरुलघु नाम - कर्म के उदय से जीव का शरीर न भारी, न हल्का होता है। **(2) उपघात नाम -** जिस कर्म के उदय से जीव स्वयं के अवयवों से क्लेश पाता है, अवयव अडचन रुप लगते हैं। रसोली, छट्ठी उंगली आदि। **(3) पराघात नाम -** जिसके उदय से जीव दूसरों के लिए अजेय हो जाता है, दूसरों को प्रभावित करता है। **(4) उच्छवास नाम -** जिसके उदय से श्वास के जरिए हवा ग्रहण कर उच्छवास के जरिए छोड़ी जाती है। **(5) उद्योत नाम -** जिसके उदय से जीव का शरीर शीतल प्रकाश करता है, जैसे चंद्र का पृथ्वी काय का शरीर **(6)**

आतप नाम - जिसके उदय से शरीर तो ठंडा रहता है लेकिन आताप रूप प्रकाश करता है। जैसे सूर्यमंडल का पृथ्वीकाय का शरीर। **(7) तीर्थंकर नाम -** जिसके उदय से तीर्थंकर की पदवी मिलती है। **(8) निर्माण नाम -** जिसके उदय से शरीर के अंगोपांग अपने स्थानपर व्यवस्थित मिलते हैं। (73)

त्रस दशक - (1) त्रस नाम - जिसके उदय से जीव को स्वयं हलन चलन करने योग्य शरीर प्राप्त होता है। **(2) बादर नाम -** जिसके उदय से बादरता (स्थुलता) प्राप्त होती है। **(3) पर्याप्त नाम -** जिसके उदय से जीव को उचित पर्याप्ति की पुर्ण प्राप्ति होती है। **(4) प्रत्येक नाम -** जिसके उदय से जीव को अपना स्वतंत्र शरीर प्राप्त होता है। **(5) स्थिर नाम -** जिसके उदय से दांत, हड्डियां आदि अंग अपनी जगह पर स्थिर रहते हैं। **(6) शुभ नाम -** जिसके उदय से शरीर शुभ होता है (नाभि के ऊपर का भाग)। **(7) सौभाग्य नाम -** जिसके उदय से जीव दूसरों के प्रितीपात्र बनता है। **(8) सुस्वर नाम -** जिसके उदय से स्वर-कंठ अच्छा होता है। **(9) आदेय नाम -** जिसके उदय से जीव के वचन मान्य, आदरणीय होते है। **(10) यशोकीर्ति नाम -** इसके उदय से संसार में यश और कीर्ति फैलती है। (83)

स्थावर दशक - (1) स्थावर नाम - जिसके उदय से जीव स्वयं हलन चलन न कर सकें ऐसा एकेंद्रीय शरीर मिलता है। **(2) सूक्ष्म नाम -** जिसके उदय से शरीर सूक्ष्म होता है। **(3) अपर्याप्त नाम -** जिसके उदय से उचित पूर्ण पर्याप्ति की प्राप्ति नहीं होती। **(4) साधारण नाम -** एक शरीर में अनंत जीव साथ में रहे, वैसा शरीर मिलता है। स्वतंत्र शरीर नहीं मिलता। **(5) अस्थिर नाम -** जिसके उदय से जीभ, त्वचा आदि अवयव अस्थिर होते हैं। **(6) अशुभ नाम -** जिसके उदय से अशुभ शरीर की प्राप्ति होती है। (नाभि के नीचे का भाग)। **(7) दुर्भाग्य नाम -** जिसके उदय से जीव दूसरें जीवों को अप्रिती पात्र बनता है। **(8) दुःस्वर नाम -** जिसके उदय से स्वर ख़राब या कर्कश आदि होता है। **(9) अनादेय नाम -** जिसके उदय से जीव के वचन अमान्य, अनादरणीय होते हैं। **(10) अयशोकीर्ति नाम -** जिसके उदय से संसार में अपकीर्ति और अपयश फैलता है। (93)

नाम कर्म की 93 प्रकृति संपूर्ण।

नाम कर्म की स्थिति जघन्य आठ मुहूर्त, उत्कृष्ट 20 क्रोडाक्रोडी सागरोपम। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट दो हजार वर्ष।

7. गोत्र कर्म का विस्तार

गोत्र कर्म के दो भेद, (1) ऊच्च गोत्र, (2) नीच गोत्र।

गोत्र कर्म सोलह प्रकार से बँधता है। उसमें ऊच्च गोत्र आठ प्रकार से तथा नीच गोत्र आठ प्रकार से बंधता है।

ऊच्च गोत्र आठ प्रकार से बँधता है- (1) जाति अमद - मातृपक्ष को जाति कहते हैं। इस पर अभिमान घमंड न करें। **(2) कुल अमद -** पितृपक्ष को कुल कहा जाता है। इसका मद न करें। **(3) बल अमद -** शरीर की विशिष्ट शक्ति पर घमंड न करें। **(4) रूप अमद -** शरीर के रूप पर अभिमान न करें। **(5) तप अमद -** शरीर की तप शक्ति का मद न करें। **(6) सूत्र अमद -** श्रुत (सूत्र) ज्ञान का मद न करें। **(7) लाभ अमद -** लाभ प्राप्ति का मद न करें। **(8) ऐश्वर्य अमद -** धन, वैभव आदि ऐश्वर्य का मद न करें।

नीच गोत्र आठ प्रकार से बँधता है। (1) जातिमद, (2) कुलमद, (3) बलमद, (4) रूपमद, (5) तपमद, (6) सूत्रमद, (7) लाभमद, (8) ऐश्वर्यमद। इस प्रकार आठ का मद करें।

गोत्र कर्म की सोलह प्रकृतियाँ,
ऊच्च गोत्र की आठ प्रकृतियाँ, नीच गोत्र की आठ प्रकृतियाँ।

ऊच्च गोत्र आठ प्रकार से भोगा जाता है: (1) जाति-विशिष्ट - ऊच्च जाति में जन्म होता है। **(2) कुल विशिष्ट -** ऊच्च कुल में जन्म होता है। **(3) बल विशिष्ट -** विशेष शारीरिक बल प्राप्त होता है। **(4) रूप विशिष्ट -** विशिष्ट रूप वाला शरीर मिलता है। **(5) तप विशिष्ट -** तप करने की विशेष शक्ति प्राप्त होती है। **(6) सूत्र विशिष्ट -** विशेष ज्ञान का लाभ होता है। **(7) लाभ विशिष्ट-** विशेष प्रकार के ऊच्च संयोग प्राप्त होते हैं। **(8) ऐश्वर्य विशिष्ट -** धन, वैभव आदि विशेष ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

नीच गोत्र आठ प्रकार से भोगे जाते है - (1) जाति विहीन, (2) कुल विहीन, (3) बल विहीन, (4) रूप विहीन, (5) तप विहीन, (6) सूत्र विहीन, (7) लाभ विहीन, (8) ऐश्वर्य विहीन।

गोत्र कर्म की स्थिति जघन्य आठ मुहूर्त, उत्कृष्ट 20 क्रोडाक्रोडी सागरोपम। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट दो हजार वर्ष।

8. अंतराय कर्म का विस्तार

अंतराय कर्म पांच प्रकार से बँधता है: (1) दानांतराय - दान देने में अंतराय देने से। **(2) लाभांतराय -** लाभ लेने में अंतराय देने से। **(3) भोगांतराय -** एक बार भोगने वाली वस्तु में अंतराय देने से। **(4) उपभोगांतराय -** बार-बार भोगे जानेवाली वस्तु में अंतराय देने से। **(5) वीर्यान्तराय -** वीर्य शक्ति के उपयोग में अंतराय देने से।

अंतराय कर्म की पांच प्रकृति, पांच प्रकार से भोगी जाती है, जो उपर बतायी गयी है।

अंतराय कर्म की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 30 क्रोडाकोडी सागरोपम है। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष।

(1) आठ कर्मों के क्रम का कारण - (1) समस्त शास्त्रों का विचार ज्ञान के द्वारा ही होता है। सकल लब्धियाँ भी ज्ञान द्वारा ही प्रगट होती है और मोक्ष प्राप्ति के समय में भी ज्ञान का ही उपयोग होता हैं। इसलिए ज्ञान गुण को प्रधानता दी गई है। और उसे ढकने वाला ज्ञानावरणीय कर्म प्रथम रखा गया है। (2) ज्ञान उपयोग पूर्ण होने पर तुरंत दर्शन का उपयोग होता है, इसलिए दर्शनावरणीय कर्म दूसरे नंबर पर है। (3) इन दोनों कर्मों के क्षयोपशम की हिनाधिनता के कारण सुख-दुःख की प्राप्ति होती है, इसलिए वेदनीय कर्म तीसरा है। (4) सुख-दुःख राग-द्वेष को जन्म देता है, इसलिए मोहनीय कर्म चौथे नंबर पर है। (5) मोह से भ्रमित आत्मा ऊंच-नीच गति में अपने आयुष्य का बंध करते है, इसलिए पांचवें नंबर पर आयुष्य कर्म है। (6) आयुष्य के कारण जीव को गति, जाति आदि की प्राप्ति होती है, इसलिए नाम कर्म छट्ठे नंबर पर है। (7) जाति आदि में ऊच्च-नीचता प्राप्त होती हैं, इसलिए सातवे नंबर पर गोत्र कर्म है। (8) गोत्र के अनुसार दान, लाभ आदि की प्राप्ति और वियोग होता हैं, इसलिए आठवां अंतराय कर्म है।

(2) कर्म दलिको का वितरण - जीव समय-समय पर 7 कर्मों को बाँधता है। जब आयुष्य कर्म बाँधता हैं, तब आठ कर्मों को बाँधता हैं। यह आयुष्य कर्म संपूर्ण भव में एक ही बार बँधता है। विभिन्न कारणों से कर्म के पुद्गल आत्मा से

बँधते हैं, तब कौनसे कर्म को कितना भाग मिलता है? (1) सबसे छोटा हिस्सा आयुष्य कर्म को मिलता है, क्योंकि उसकी स्थिति कम है। (2) उसके बाद नाम-गोत्र को परस्पर समान और (3) इसके बाद ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय को परस्पर समान और उपरोक्त दोनों से अधिक भाग मिलता हैं, क्योंकि उनकी स्थिति विशेष है। उससे मोहनीय कर्म को अधिक भाग मिलता है, क्योंकि उसकी स्थिति विशेष है। वेदनीय कर्म को सबसे अधिक भाग मिलता है, उसकी स्थिति कम है, परन्तु उसमें पुद्गल ज्यादा होते है, तो ही अपना फल दिखा सकते है, अनुभव कर सकते है। इसलिए सबसे अधिक भाग वेदनीय कर्म को मिलता है।

(3) अनादि कर्म का अंत - कर्म अनादि से हैं, फिर भी कर्मो का अंत हो सकता है। जैसे खदान में सोना और मिट्टी अनादि काल से एक साथ रहने के बाद भी प्रयोग द्वारा उसे शुद्ध करके उसमें से मिट्टी आदि अशुद्धियाँ दूर कर दी जाती हैं। उसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना द्वारा आत्मा को शुद्ध बनाकर सिद्ध बनाया जा सकता है।

4. कर्मो की विभिन्न अवस्थाएँ

(1) बंध, (2) उद्वर्तन, (3) अपवर्तन, (4) सत्ता, (5) उदय, (6) उदिरणा, (7) संक्रमण, (8) उपशम, (9) निद्धत्त, (10) निकाचित, (11) क्षयोपशम, (12) क्षय

(1) बंध - मिथ्यात्व आदि कारणों से जीव और कर्मो का एकमेक होना ही बंध है। जैसे दूध में पानी या लोहे में आग।

(2) उद्वर्तन - जीव के परिणामों के कारण पूर्व बँधे कर्मों की स्थिति और अनुभाग (रस) को बढाना यह उद्वर्तन।

(3) अपवर्तन - जीव के परिणामों के कारण पूर्व बँधे कर्मो की स्थिति और अनुभाग (रस) को कम करना यह अपवर्तन।

(4) सत्ता - बँधा हुआ कर्म उदय में न आये, तब तक जो कर्म की जितनी स्थिति होती है, तब तक वे आत्मा के साथ बँधे रहते है, फल दिये बिना रहे, उसे सत्ता कहते हैं।

(5) उदय - कर्मो का अबाधाकाल पूरा होने पर फल देने लगे उसे उदय कहते हैं। उदय के दो प्रकार है - **(1) प्रदेशोदय -** कर्मों का उदय जो आत्मप्रदेश में आकर

क्षय हो जाता है लेकिन जीव द्वारा अनुभव नहीं किया जाता है उसे प्रदेशोदय कहा जाता है। प्रदेशोदय में विपाकोदय की भजना (हो भी सकता है और नहीं भी)। **(2) विपाकोदय -** जिस कर्म का फल शुभ या अशुभ रुप में जीव को अनुभव में आता है वह विपाकोदय है। विपाकोदय में प्रदेशोदय नियमा (होता ही) हैं।

(6) उदीरणा - भविष्य में उदय होने वाले कर्म को तप आदि के द्वारा विशेष प्रयत्न करके खिंचकर उदय में लाना उसे उदिरणा कहते हैं। जो कर्म उदय आवलिका में न आये हो उसी की उदीरणा हो सकती है।

(7) संक्रमण - एक कर्म प्रकृति का दूसरें सजातीय कर्म प्रकृति में पलटना संक्रमण है। जैसे अशाता का शाता में संक्रमण होता है। लेकिन ज्ञानावरणीयकर्म का दर्शनावरणीयकर्म में संक्रमण नहीं होता।

(8) उपशम - कर्मों के पुद्गलों को इस प्रकार दबा कर रखना कि वे उदय में ना आये और उनकी उदीरणा भी न हो, वह उपशम है। उपशम केवल मोहनीय कर्म का ही होता है।

(9) निद्धत्त - जो कर्म प्रबल, तीव्र रस से, गाढ बंधे हुए हों और जिनमें उद्वर्तन, अपवर्तन के सिवा संक्रमण आदि न हो सकें, उसे निद्धत्त कहते हैं।

(10) निकाचित - जो कर्म तीव्र रस से, गाढे (गाढ) बंधे होते हैं, जिनमें कोई उद्वर्तन, अपवर्तन या संक्रमण आदि नहीं हो सकता। जिसके फल अवश्य भुगतने पड़ते है उसे निकाचित कर्म कहते हैं।

(11) क्षयोपशम - जो कर्म उदय में आते है उसे विपाकोदय से भुगत लेना और जो सत्ता में हैं उसका उपशम करना वह क्षयोपशम। क्षयोपशम केवल चार घाती कर्मों का ही होता है।

(12) क्षय - आत्मप्रदेशों से कर्म पुद्गलों का अलग होना। क्षय आठों कर्मों का हो सकता है।

।। इति श्री आठ कर्मों की प्रकृति ।।

आठ कर्मों का कोष्टक

क्रम	कर्म का नाम	किसके समान	कौन से गुण को रोकता है ?	बाँधना	भुगतना	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
1	ज्ञानावरणीय	आंखों पर पट्टे समान	अनंत ज्ञान गुण	6	5/10	अंतर्मुहूर्त	30 क्रो. क्रो. सागरोपम
2	दर्शनावरणीय	राजा के द्वारपाल समान	अनंत दर्शन गुण	6	9	अंतर्मुहूर्त	30 क्रो. क्रो. सागरोपम
3	वेदनीय	शहद से लिपटी तलवार समान	अनंत अव्याबाध आत्मिक सुख	22	16	दो समय	30 क्रो. क्रो. सागरोपम
4	मोहनीय	मदिरापान समान	वीतरागता	6	5/28	अंतर्मुहूर्त	70 क्रो. क्रो. सागरोपम
5	आयुष्य	बेडी समान	अक्षय स्थिति	16	4	अंतर्मुहूर्त	33 सागरोपम
6	नाम	चित्रकार समान	अमूर्त	8	28/93	8 मुहूर्त	20 क्रो. क्रो. सागरोपम
7	गोत्र	कुंभार के चाक समान	अगुरुलघु	16	16	8 मुहूर्त	20 क्रो. क्रो. सागरोपम
8	अंतराय	राजा के भंडारी समान	अनंतवीर्य	5	5	अंतर्मुहूर्त	30 क्रो. क्रो. सागरोपम

छह आरे (कालचक्र) के भाव

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार-2

अनंता अलोक के बीच जिसमें हम रहते है, वह लोक है। लोक के तीन भाग हैं: नीचे अधोलोक, मध्य में तिच्छालोक/मध्यलोक और ऊपर उर्ध्वलोक। तिच्छालोक में असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र हैं। इसके मध्य में ढाईद्वीप है, इस ढाईद्वीप में सूर्य और चंद्र घुमते रहने से दिन और रात होते हैं।

इस ढाईद्वीप में पंद्रह कर्मभूमि हैं। जिसमें से पांच महाविदेह क्षेत्रों में काल एक समान होता है। परंतु पाँच भरत और पाँच ऐरवत क्षेत्रों में काल सदैव एक जैसा नहीं होता। ऊतरते काल को अवसर्पिणीकाल तथा चढते काल को उत्सर्पिणीकाल कहा जाता है। ये दोनों मिलाकर एक कालचक्र बनता हैं। जिस प्रकार बैल गाड़ी के पहियों के भाग को आरा कहा जाता है, उसी प्रकार कालचक्र के विभाग को आरा कहा जाता है। अवसर्पिणी के **6** और उत्सर्पिणी के **6** मिलकर बारह आरों का एक कालचक्र बनता हैं। ऐसे कालचक्र एक के बाद एक अनंत हो गए हैं और भविष्य में भी अनंत होते रहेंगे। इन काल और कालचक्र की जानकारी छह आरे के थोकडे में दी गई है।

दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम के अवसर्पिणी के छह आरे और दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम के उत्सर्पिणी के छह आरे हैं। कुल **20** क्रोडाक्रोडी सागरोपम का एक कालचक्र बनता हैं। (काल का माप और अवगाहना की जानकारी को समझने के लिए श्रेणी आठ तत्त्व विभाग देखें)।

यहाँ हम सबसे पहले अवसर्पिणी काल के छह आरे को जानेंगे।

अवसर्पिणीकाल, जिसमें जीवों का संघयण, संस्थान, आयुष्य, अवगाहना, उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुषाकार और पराक्रम क्रमशः धीरे-धीरे कम होते जाते हैं, पुद्गलों का रंग, गंध, स्वाद और स्पर्श भी कम होता जाता है, अशुभ भाव बढते जाते है।

पहला आरा

पहला आरा चार क्रोडाक्रोडी सागरोपम का, जिसे सुषम सुषम कहा जाता है। जिसका मतलब होता है बेहद सुखमय। इस आरे की शुरुआत में शरीर की ऊंचाई/अवगाहना 3 गाउ की, उतरते आरे में 2 गाउ की होती हैं। इस आरे की शुरुआत में आयुष्य 3 पल्य का, उतरते आरे में 2 पल्य का होता है। इस आरे की

शुरुआत में शरीर में **256** पसलियाँ और उतरने पर 128 पसलियाँ होती हैं। वज्रऋषभनाराच संघयण एवं समचतुरंस्र संस्थान होता है। इस आरे में अट्ठमभक्ते (तीन दिनके बाद) आहार करने की इच्छा होती है, तब शरीर के अनुसार आहार करते है। जमीन की सरसाई (रस) सक्कर समान, उतरते आरे में जमीन की सरसाई चीनी जैसी। इस आरे में दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं, जो जुगलियों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इस दस प्रकार के कल्पवृक्ष के पास जो फल होते है वही फल जुगलिक प्राप्त करते है। जिसका मन में चिंतन होता है, वह पाने में असमर्थ होते है।

दस कल्पवृक्षों के नाम का अर्थ - (1) मधुर रसवाले फल का कल्पवृक्ष। (2) रत्नजडीत भाजन (बर्तन), पात्र के कल्पवृक्ष। (3) 49 प्रकार के वाजिंत्र के कल्पवृक्ष। (4) रत्नमय दीपों के कल्पवृक्ष। (5) सूर्य के समान उजाला देने वाले कल्पवृक्ष। (6) चित्रकला सहित पुष्पमाला के कल्पवृक्ष। (7) मन को प्रसन्न करने वाले स्वादिष्ट भोजन के कल्पवृक्ष। (8) रत्नजड़ित आभूषणों के कल्पवृक्ष। (9) आवास (मकान) के कल्पवृक्ष। (10) रत्नजड़ित वस्त्रों के कल्पवृक्ष। ये दस प्रकार के कल्पवृक्ष (वनस्पति काय के) जुगलिक को सुख देते है।

इस आरे में जुगलिक का आयुष्य छह महीने बाकी रहता हैं, तब जुगलिक परभव का आयुष्य बाँधते है। तब जुगलीनी जुड़वां बच्चे को जन्म देती है। 49 दिनों तक जुड़वां बच्चे की देखभाल करती है। जुगल-जुगलीनी को क्षण मात्र का भी वियोग नहीं पड़ता। एक छींकता है और दूसरा जम्हाई लेता है या डकार लेता है, तब मरकर देवगति में जाते हैं। (जुगलिक के क्षेत्र में स्निग्धता- सरसता के कारण शरीर गल जाता है।) गति एक मात्र देव की करते है। इस आरे में कोई वैरभाव नहीं, कोई द्वेष नहीं, कोई ईर्ष्या नहीं, कोई बुढापा नहीं, कोई बीमारी नहीं, कोई कुरूपता नहीं, परिपूर्ण अंग-उपांग से सुख भुगतते है। यह पूर्व भव में किए गए दान-पुण्य का फल होता है।

दूसरा आरा

पहला आरा खत्म होता है और दूसरा आरा शुरू होता है, तब रंग, गंध, स्वाद और स्पर्श की मात्रायें अनंत रूप से कम हो जाती हैं। दूसरा आरा तीन क्रोडाक्रोडी सागरोपम का होता है। यह आरा सुषम याने जिसका अर्थ है सुखमय। इस आरे के शुरूआत के समय में शरीर की अवगाहना 2 गाउ की, आरे के अंत

समय में 1 गाउ की होती है। आयुष्य 2 पल्योपम का, उतरते आरे में 1 पल्योपम का, वज्रऋषभनाराच संघयण और समचतुरंस्र संस्थान। आरे के प्रारंभ में शरीर में 128 पसलियाँ और आरे के अंत में 64 पसलियाँ होती हैं। इस आरे में छट्ठभक्ते (दो दिन के बाद) आहार की इच्छा होती है। अपने शरीर प्रमाण आहार करते है। जमीन की सरसाई चीनी के बराबर है, आरे के अंत समय में गुड समान होती है। जैसा कि पहले आरे में कहा गया है, दस प्रकार के कल्पवृक्ष मनवांछित सुख देते हैं।

जब जुगलियों का आयुष्य छह महीने शेष रहेता है, तब जुगलिया परभव के आयुष्य को बांधते है। तब जुगलानी एक जोड़े को जन्म देती है। 64 दिन तक जुडवे की प्रतिपालना करते है। जुगल-जुगलानी को एक क्षण का भी वियोग नहीं होता। एक छींकता है, दूसरा जम्हाई लेता है या डकार लेता है, तब मरकर देवगति में जाते है। गति देव की ही करते है। इस आरे में कोई बैरभाव नहीं, कोई ईर्ष्या नहीं, कोई बीमारी नहीं, कोई जरा नहीं, कुरूपता नहीं, परिपूर्ण अंग-उपांग के सुख भुगतते है। यह पूर्व भव में किए गए दान-पुण्य का फल होता है।

तीसरा आरा

जब दूसरे आरे का अंत होता है और तीसरा आरा शुरू होता है तब रंग, गंध, स्वाद, स्पर्श की मात्रायें अनंत अनंत हीन हो जाती हैं। तीसरा आरा दो क्रोडाक्रोडी सागरोपम का है, जिसका नाम सुषम दुषम है, जिसका अर्थ है अधिकतम् सुख और थोड़ा दुख। आरे की शुरूआत में शरीर की अवगाहना 1 गाउ की होती है, आरे के अंत समय में शरीर की अवगाहना पाँच सौ धनुष होती है। आरे के शुरूआत के समय में 1 पल्योपम का आयुष्य और आरे के अंत समय में 1 करोड़ पूर्ववर्ष का आयुष्य होता है। इस आरे में जुगलकाल तक वज्रऋषभनाराच संघयण, और समचतुरंस्र संस्थान होता है। आरे के अंत समय में छह संघयण और छह संस्थान होते हैं। शरीर में 64 पसलियाँ होती हैं, आरे के अंत समय में 32 पसलियाँ होती हैं। इस आरे में चौथभक्त (एक दिन के बाद) आहार की इच्छा होती है। तब शरीर प्रमाण आहार ग्रहण करते है। भूमि की सरसाई गुड समान, आरे के अंत समय में जमीन की सरसाई अच्छी होती है। इस आरे में जुगलिक काल तक दस प्रकार के कल्पवृक्ष मनवांछित सुख प्रदान करते है, ऊपर प्रथम आरे में कहा गया, वैसे।

जब जुगलियों का छह महीने का आयुष्य शेष होता है, तब जुगलिया परभव के आयुष्य का बंध करते है। फिर जुगलानी एक जोड़े को जन्म देती है। जुगलानी उस

जोडे का 79 दिन तक प्रतिपालन करती है। जुगल-जुगलानी को एक क्षण का भी वियोग नहीं होता। एक छींकता या जम्हाई लेता है दुसरा डकार लेता है तो उसकी मृत्यु हो जाती है। ये तीन आरे जुगलिया के होते है। सिर्फ जुगल धर्म ही होता हैं। इस तीसरे आरे में, जुगलियाकाल तक एक देव गति को जानना। इस जुगलिक काल में कोई बैरभाव नहीं, कोई ईर्ष्या नहीं, कोई बीमारी नहीं, कोई कुरूपता नहीं, परिपूर्ण अंग-उपांग का सुख भुगतते है। यह पूर्व भव में किए गए दान-पुण्य का फल होता है।

इस तीसरे आरे के एक पल्य का आठवे हिस्से जितना काल बाकी रहा, तब कल्पवृक्षों की शक्ति कम होने लगी। इस वजह से जुगलिकों के बीच द्वेष और कषाय बढ़ने लगे और अंदरूनी झगड़े शुरू हो गए। उनके झगड़ों को निपटाने के लिए 'सुमति' की कुलकर (प्रशासक/मांडलिक राजा) के रूप में नियुक्ती कि गई। ऐसे कुलकर पंद्रह हुए। पहले पांच कुलकरों के लिए 'ह'कार दंड' अर्थात् 'हं' कहने के बाद व्यक्ति दोबारा अपराध नहीं करता था। छट्ठे से दसवें ऐसे पाँच कुलकरों तक 'म' कार दंड ''ऐसा मत करो'' ऐसा कहा जाता था। 11वें से 15वें कुलकर तक 'धिक्कार' दंड, अर्थात् "आपने ऐसा काम किया? तुम्हें धिक्कार है" इतना कहा जाता था। 14वें कुलकर नाभिराजा, 15वें कुलकर ऋषभदेव (अवसर्पिणी काल के पहले तीर्थंकर) बने।

तृतीय आरे के शेष 84 लाख पूर्व, 3 वर्ष और 8॥ महिने जब शेष रहे, तब पांचवे अनुत्तर विमान सर्वार्थसिद्ध में 33 सागरोपम का आयुष्य भुगतने के बाद वहाँ से च्यवन करके नाभिकुलकर राजा के घर और मरुदेवी माता की कुक्षि में श्री ऋषभदेव स्वामी पधारें।

उनका जन्म सवा नौ महीने के बाद पेड़ के नीचे हुआ। माता ने देखें हुए 14 स्वप्न में से पहला स्वप्न ऋषभ का देखा था, इसलिए ऋषभदेव नाम दिया गया था। जब उनका जन्म हुआ तब जुगल काल चल रहा था। उनकी 20 लाख पूर्व की आयु में शक्रेन्द्र ने विनीता नगरी की रचना की और ऋषभदेव को राजा बनाया। ऋषभदेव स्वामी ने जुगलिया धर्म को दूरकर 1 असि, 2 मसि, 3 कृषि आदि 72 कलाओं की पुरुषों को शिक्षा दी। स्त्रियों को 64 कलाएँ सिखाई। अनुकंपा के निमित्त वश 20 लाख पूर्व वर्ष तक कुंवर बनकर रहे और 63 लाख पूर्व वर्ष राज्य को संभाला। तद् पश्चात उन्होंने अपने पुत्र भरत को राज्य सौंपकर 4000 पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहण की। 1000 वर्ष के बाद केवलज्ञान प्राप्त किया। ऋषभदेव के पुत्र भरत राजा को एक

साथ दो शुभ संदेश मिले 1. भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और 2. भरत के शस्त्रागार में सुदर्शन चक्र (चक्र रत्न) उत्पन्न हुआ। उस चक्ररत्न के प्रभाव से राजा भरत इस अवसर्पिणीकाल के प्रथम चक्रवर्ती बने। उनके पिता श्री ऋषभदेव इस अवसर्पिणीकाल के पहले राजा, पहले केवली, पहले तीर्थंकर बने।

ऋषभदेव ने छद्मस्थ अवस्था और केवली अवस्था, दोनों को मिलाकर एक लाख पूर्व वर्ष संयम की पालना की। वह अष्टापद पर्वत पर छह दिनों के चौविहारा संथारा के साथ पद्मासन में बैठकर दस हजार साधुओं के साथ मोक्ष पधारें। इस तीर्थंकर के पाँचों कल्याणक, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में हुए। इस में 1. सर्वार्थसिद्ध विमान से च्यवन कर रानी मरुदेवी की कुक्षि में उत्पन्न हुए, 2. जन्म, 3. राज्याभिषेक, 4. दीक्षा अंगीकार, 5. केवलज्ञान प्राप्ति और अभिजीत नक्षत्र में मोक्ष पधारें। जुगलिया धर्म निवारण के बाद गति पांच होती है।

चौथा आरा

जब तीसरे आरे का अंत होता है और चौथा आरा शुरू होता है, तो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की मात्रायें अनंत अनंत हीन हो जाती हैं। चौथा आरा एक क्रोडाक्रोडी सागरोपम में 42,000 वर्ष कम। यह आरा दुषम सुषम नाम का, जिसका अर्थ है बहुत सारी विषमता और सुख कम। आरे के शुरूआत में अवगाहना पाँचसौ धनुष की, आरे के अंतिम समय में सात हाथ की होती है। आरे की शुरूआत में क्रोड पूर्व का आयुष्य, आरे के अंतिम समय में सौ वर्ष से अधिक आयुष्य होता है। आरे के शुरूआत में 32 पसलियाँ और आरे के अंतिम समय में 16 पसलियाँ होती हैं। इस आरे में छह संघयण, छह संस्थान होते हैं। इस आरे में प्रतिदिन भोजन की इच्छा होती है, तब पुरुष 32 कंवल का, स्त्री 28 कंवल का और नपुंसक 24 कंवल का आहार करते है। उस आरे में गति 5 जानिए, भूमि की गुणवत्ता को अच्छा और आरे के उतरते उतरते भूमि की गुणवत्ता कम होती जानिए।

इस चौथे आरे में, शेष 23 तीर्थंकर, 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव और 9 प्रतिवासुदेव इस तरह मिला के 63 श्लाघनीय (श्रेष्ठ पुरुष) अवसर्पिणीकाल में जन्म लेते हैं।

जब इस आरे के 75 वर्ष और साढ़े आठ महीने शेष रह गए, तब 10वें प्राणत देवलोक में 20 सागरोपम का आयुष्य व्यतीत करके (च्यवन करके), माहण कुंड नगरी में, ऋषभदत्त ब्राह्मण के घर, देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षी में श्री महावीर स्वामी

का जीव आषाढ़ सुदी छठ् की मध्यरात्रि को जन्मा, वहा स्वामी 82 रात्रि रहे।

83 की रात्रि में शकेन्द्र का आसन चलित हुआ, तब शकेन्द्र ने अवधि ज्ञानका उपयोग लगा के देखा कि श्री महावीर स्वामी एक भिक्षुक कुल में जन्मे है, यह अनंत काल में हुआ आश्चर्य था।

तब शकेंद्र ने हरिणैगमैषी देव को बुलाकर कहां,"तुम जाओ, जाकर क्षत्रिय कुंड नगर में, राजा सिद्धार्थ के घर तथा रानी त्रिशला देवी के गर्भ में श्री महावीर स्वामी का गर्भ स्थापित करो।तब हरिणैगमैषी ने "तथैति"(जैसे कहा जा रहा है वैसे ही) कहा, और उसी क्षण, वह माहणकुंड पहुँचें, भगवान को प्रणाम किया, और कहा, "हे स्वामी!आपको अच्छी तरह से पता होगा कि मैं आपका गर्भ साहरण कर रहा हूँ।"उस समय देवानंदा ब्राह्मणी को अवस्वापिनी निंद्रा का प्रयोग करके उसके गर्भ का साहरण कर लिया, और उन्हें क्षत्रिय कुंड नगर में ले जाकर, राजा सिद्धार्थ के घर, रानी त्रिशला देवी के गर्भ में स्थापित कर दिया।

कुल मिलाकर सवा नौ महीने बाद चैत्र सुद की तेरस को भगवान महावीर का जन्म हुआ।

इसके बाद क्रमशः जब वे यौवनावस्था को प्राप्त हुए तो यशोदा नामक स्त्री से विवाह हुआ। सांसारिक सुख भुगतते हुए एक पुत्री का जन्म हुआ, जिसका नाम प्रियदर्शना रखा गया। भगवान महावीर जब 28 वर्ष के थे, तब राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला ने एक माह का संथारा लेकर आराधक श्रावक बनकर बारहवें देवलोक में जन्म लिया। इसके बाद बड़े भाई के आग्रहवश वैराग्यभाव से संसार में दो वर्ष रहे। फिर 30 वर्ष की आयु में, कार्तिक वदी दशमी को एकाकी रूप में संयम ग्रहण किया।

संयम लेकर साढ़े बारह वर्ष और 15 दिन तक संयम और तप की घोर साधना की। अंततः वैशाख सुदी दसमी के दिन, चौथी पोरसी में, जृंभिक ग्राम के बाहर, ऋजुवालिका नदी के उत्तर तट पर, सामानिक गाथापति के खेत में, गुप्त यक्ष के चैत्य के ईशान कोण में, शाल वृक्ष के नीचे, उकडू अर्थात् गोदूह आसन में बैठकर, धूप की आतापना लेते हुए चौविहार छट्ठ तप की आराधना करते हुए, श्री महावीर स्वामी ने शुक्ल ध्यान ध्याते हुए (1) मोहनीय, (2) ज्ञानावरणीय, (3) दर्शनावरणीय, (4) अंतराय- इन चार घाति कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान एवं केवलदर्शन की प्राप्ति की। उन्हों ने उनतीस वर्ष और साढ़े पाँच महीने तक केवली

रूप में विचरण किया। उन्होंने कुल मिलाकर 72 वर्ष का आयुष्य भुगता।

जब चौथे आरे में तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने शेष थे, उस समय आसो वदी अमावस्या (आगमिक भाषा में कार्तिक वदी अमावस्या) के दिन पावापुरी नगरी में भगवान महावीरने अकेले ही निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त किया। भगवंत के पाँच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में संपन्न हुए - (1) दसवें प्राणत देवलोक से च्यवन पाकर देवानंदा की कुक्षि में उत्पन्न हुए, (2) गर्भ का स्थानांतरण हुआ, (3) जन्म हुआ, (4) दीक्षा अंगीकार की, (5) केवलज्ञान प्राप्त किया और स्वाति नक्षत्र में भगवान ने मोक्ष प्राप्त किया।

श्री महावीर प्रभु निर्वाण को प्राप्त हुए, कुछ समय में श्री गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। श्री गौतमस्वामी 12 वर्ष केवली रूप रहकर मोक्ष पधारें। उनके बाद श्री सुधर्मा स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। श्री सुधर्मा स्वामी 8 वर्ष केवली रूप में रहकर मोक्ष पधारें। तत्पश्चात श्री जंबूस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। श्री जंबूस्वामी 44 वर्ष केवली रूप में रहकर मोक्ष पधारें। इस प्रकार, श्री महावीर प्रभु के मोक्ष जाने के पश्चात कुल 64 वर्षों तक केवलज्ञान रहा। उसके बाद केवलज्ञान का विच्छेद (नाश) हो गया।

चौथे आरे में जन्मे व्यक्ति पाँचवे आरे में मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, किंतु जो पाँचवे आरे में जन्मे हैं वे उसी आरे में मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। जंबूस्वामीजी के मोक्ष प्राप्त करने के बाद दस बोल (उपलब्धियाँ) नष्ट हो गए -

(1) केवलज्ञान, (2) मन:पर्यवज्ञान, (3) परम अवधिज्ञान, (4) यथाख्यात चारित्र, (5) सूक्ष्म संपराय चारित्र, (6) परिहारविशुद्ध चारित्र, (7) पुलाक लब्धि, (8) क्षपक श्रेणी, उपशम श्रेणी, (9) आहारक शरीर, (10) जिनकल्पी परंपरा।

पाँचवां आरा

चौथे आरे के समाप्त होते पाँचवां आरा प्रारंभ होता है। इस आरे में वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श के पर्यव अनंत-अनंत हीन होते हैं। पाँचवां आरा 21,000 वर्षों का होता है। यह आरा "दुषम" नाम से जाना जाता है अर्थात् केवल दुख की अनुभूति वाला काल। इस आरे की शुरूआत में सात हाथ की अवगाहना होती है और उतरते समय दो हाथ की अवगाहना होती है। आरे की शुरूआत में 100 वर्षों से अधिक आयु होती है, आरे के अंत में 20 वर्ष की होती है। आरे की शुरूआत में शरीर में 16 पसलियाँ होती हैं, और आरे के अंत समय में 8 पसलियाँ। इस आरे में

छह संघयण और छह संस्थान होते हैं। आरे के अंत में अंतिम (सेवार्त) संघयन और हूंड संस्थान होता हैं। इस आरे में व्यक्ति दिन-प्रतिदिन आहार की इच्छा करता है और अपने शरीर के अनुसार आहार करता है। भूमि की सरसाई थोड़ी - अर्थात् कुछ हद तक अच्छी - होती है, जबकि आरे के अंत समय में यह कुम्हार की निंभार (मिट्टी की राख) जैसी होती है। गति चार होती है। मोक्षगति बंद हो जाती है।

पाँचवें आरे के लक्षणों के 32 बोल इस प्रकार हैं -

1. बड़े नगर गाँव के समान हो जाएँगे।
2. गाँव श्मशान के समान हो जाएँगे।
3. उच्च कुल के पुत्र दास-दासी जैसे याने नीच कुल के हो जाएँगे।
4. प्रधान लालची हो जाएँगे।
5. राजा यमदंड जैसे अत्याचारी बनेंगे।
6. अच्छे कुल की स्त्रियाँ लज्जारहित हो जाएँगी।
7. अच्छे कुल की स्त्रियाँ वेश्या के समान आचरण करेंगी।
8. पुत्र अपनी इच्छा और मर्जी से स्वतंत्र चलेंगे।
9. शिष्य गुरु के अवर्णवाद (निंदा) करेंगे।
10. दुष्ट लोग सुखी होंगे।
11. सज्जन लोग दुखी होंगे।
12. दुर्भिक्ष (वर्षा होगी, थोड़े अन्न की उपज भी होगी परंतु उस क्षेत्र में अनार्यता इत्यादि होने के कारण भिक्षा प्राप्ति दुर्लभ होगी) और दुष्काल (वर्षा न हो, अन्न उपजे नहीं ऐसा समय) अधिक होंगे।
13. चूहे, साँप आदि की दाढ़ (काटने की प्रवृत्ति) अधिक होगी - अर्थात् वातावरण में विष और जहरीले तत्वों की तीव्रता अधिक होने से उनके जहरमें तीव्रता बढेगीं।
14. ब्राह्मण धन के लोभी होंगे।
15. हिंसा को धर्म बतानेवाले अधिक होंगे।
16. एक ही धर्म में अनेक भेद हो जाएँगे।
17. मिथ्यात्वी (मिथ्या मतावलंबी) देव अधिक होंगे।
18. मिथ्यात्वी लोग अधिक हो जाएँगे।
19. मनुष्यों के लिए देवदर्शन दुर्लभ हो जाएगे।

20. वैताढ्य पर्वत की श्रृंखला में रहने वाले विद्याधरों का विद्याप्रभाव कम हो जाएगा।
21. दूध, दहीं, घी आदि में पौष्टिकता और सारता कम हो जाएगी।
22. बैल आदी पशु का बल और आयु कम हो जाएगें।
23. साधु-साध्वियों के लिए मास-कल्प एवं चातुर्मास करने योग्य क्षेत्र कम रहेंगे।
24. श्रावकों की ग्यारहवीं प्रतिमा और साधुओं की बारहवीं प्रतिमा का विच्छेद हो जाएगा।
25. गुरु शिष्यों को शिक्षित नहीं करेंगे।
26. शिष्य अविनीत और कलहप्रिय होंगे।
27. अधर्मी, कलहकारी, झगड़ालू, कुमनुष्य अधिक होंगे और सुमनुष्य (सज्जन) बहुत कम रह जाएंगे।
28. आचार्य अपने-अपने गच्छ की परंपरा व समाचारी का अलग-अलग प्रवर्तन करेंगे और मूढ़, मूर्ख मनुष्यों को मोह और मिथ्यात्व के जाल में डालेंगे। वे उत्सूत्र (शास्त्रों से विपरीत) बोलेगें। निंदक और कुबुद्धिवाले अधिक होंगे और अपनी परंपरा में ही उलझे रहेंगे।
29. सरल, भद्र, न्यायी और प्रामाणिक पुरुष बहुत थोड़े रह जाएँगे।
30. म्लेच्छों (अनार्य) के राज्य अधिक होंगे।
31. हिन्दुओं के राज्य अल्प समृद्धिवाले और बहुत कम रह जाएँगे।
32. उच्च कुल के राजा भी नीच कार्य करेंगे और अन्याय, अधर्म तथा कुव्यसन में लिप्त रहेंगे।

इस आरे के अंत में सर्व धन का विच्छेद हो जाएगा। लोहे की धातु शेष रहेगी। चमड़े की मुद्राएँ (सिक्के) होगी, उन्हें धनी कहा जाएगा। इस आरे में एक उपवास करना, मासक्षमण के समान कठिन प्रतीत होगा।

इस आरे के अंतिम चरण में समस्त ज्ञान का विच्छेद हो जाएगा। केवल 'श्री दशवैकालिक सूत्र' के पहले चार अध्ययन शेष रहेंगे। इन्हीं के आधार पर चार जीव संथारा लेकर एकावतारी बनेंगे। उन चार जीवों के नाम इस प्रकार हैं:

(1) दुपसह नामक आचार्य, (2) फाल्गुनी नामक साध्वी, (3) जिनदास नामक श्रावक (4) नागश्री नामक श्राविका।

आषाढ़ सुदी पूर्णिमा (15) के दिन शक्रेन्द्र का आसन चलायमान होगा।

तब शक्रेन्द्र उपयोग से देखेंगे कि आज पाँचवा आरा समाप्त हो रहा है और कल छट्ठा आरा आरंभ होगा। तब वह आकर उन चार जीवों से कहेंगे -

"कल छट्ठा आरा आरंभ होगा। इसलिए आप आलोचना, प्रतिक्रमण और स्व दोषों की निंदा कर निःशल्य बनो।" तब वे चारों जीव वैसा ही करेंगे - सब से क्षमा माँगकर 'निःशल्य' (निर्दोष) होकर संथारा लेंगे। उसी समय संवर्तक और महासंवर्तक नामक वायु उत्पन्न होगा।

उस काल में दिशाएँ निरंतर धूल से भरी होंगी। रजकण और धूल से भरी दिशा के कारण आगे कुछ भी दिखाई नहीं देगा। अंधकार के कारण चारों ओर प्रकाशहीनता छा जाएगी। समय की रूक्षता के कारण चंद्रमा से असह्य ठंड और सूर्य से अत्याधिक तपन महसूस होगी।

फिर दस प्रकार के मेघ बरसेंगे - (1) अरस मेघ - जिस में रस न हो। (2) विरस मेघ- जिस में विपरीत या विकृत रस हो। (3) क्षार मेघ - क्षार समान पानी युक्त मेघ। (4) खट्टा मेघ - खट्टे स्वादवाला जल। (5) अग्नि मेघ - अग्नि वर्षा करने वाला मेघ। (6) विद्युत मेघ - बिजली के प्रभाव से युक्त। (7) विष मेघ - विषैले जल की वर्षा करने वाला। (8) व्याधि मेघ - विविध प्रकार के रोग से वेदना उत्पन्न कराता हुआ मेघ। (9) जल मेघ - दूषित जल से भरा हुआ मेघ। (10) अप्रिय मेघ - निरंतर, तीव्र और असह्य गति से वर्षा करने वाला मेघ।

ऐसी वर्षा से पहाड़, पर्वत, दुर्ग, टापू, कुएँ, सरोवर आदि सभी स्थानक नष्ट हो जाएँगे। केवल ये पाँच स्थानक शेष रहेंगे - (1) वैताढ्य पर्वत, (2) गंगा नदी, (3) सिंधु नदी, (4) ऋषभकूट (यह एक पर्वत है जो कूट यानेकी शिखर के स्वरूप की तरह होने से ऋषभकूट कहा गया है), (5) लवण की खाड़ी। इन पाँच के अलावा अन्य सभी स्थानक नष्ट हो जाएँगे।

ये चार जीव समाधि परिणाम से काल को प्राप्त कर पहले देवलोक जाएँगे। उस समय चार बोल विच्छेद हो जाएगें -

(1)प्रथम प्रहर में जैन धर्म का विच्छेद हो जाएगा। (2) द्वितीय प्रहर में मिथ्यात्वी (मिथ्या मतावलंबियों) का धर्म भी समाप्त हो जाएगा। (3)तृतीय प्रहर में राजनीति (राजसत्ता और शासन की व्यवस्था) का नाश हो जाएगा। (4) चतुर्थ प्रहर में बादर अग्नि का भी अंत हो जाएगा।

छठा आरा

जब पाँचवा आरा समाप्त होकर छट्ठा आरा आरंभ होगा, तब वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के पर्याय अनंत-अनंत हीन हो जाएँगे। यह आरा 21,000 वर्षों का होगा। यह आरा "दुषम-दुषम" कहा जाता है अर्थात् यह आरा अत्यंत भयानक और बेहद दुःखदायी होगा। बैठते आरे में केवल दो हाथ की अवगाहना होगी, और उतरते आरे में मात्र एक हाथ की। आरे के प्रारंभ में आयुष्य 20 वर्ष का होगा और आरे के अंत समय में 16 वर्ष का। आरे के प्रारंभ में शरीर में 8 पसलियाँ होंगी और आरे के अंत समय में 4 पसलियाँ। छेवटुं (सेवार्त) संघयण और हूंड संस्थान - उतरते आरे तक रहेगें, आरे के अंत समय में भी यही जानना। धरती की सरसाई राख के समान रहेगीं। छः वर्ष की आयु में स्त्री गर्भ धारण करेगी। ऐसे समय में जन्म लेने वाले बच्चे काले, कुरूप, रोगग्रस्त, क्रोधी और नाखून तथा अत्याधिक बाल युक्त होंगे। वह कुत्तियाँ के समान परिवार सहित इधर-उधर घूमेंगी। इस आरे में गंगा और सिंधु नदियों के किनारे, वैताढ्य पर्वत के मूल में 72 बिल (गुफाएँ) होंगे, जिनमें मनुष्य, तिर्यंच और पक्षी बीज मात्र (अंश रूप में कुछ) जीवित रहेंगे। इन नदियों का पट 62॥ योजन लंबा है। पर उस समय उनकी चौड़ाई रथ के चक्को के अंतर जितनी और गहराई गाड़ी की धुरी डूबे उतनी होगी। इन नदियों में बहुत सी मछलियाँ और कछुए होंगे। 72 बिलों में रहने वाले मनुष्य सुबह और शाम को मछलियाँ और कछुए निकालकर रेत में सेंकेंगे। सूर्य अत्यधिक तपेगा और ठंड भी असहनीय होगी। इसलिए वे जीव पक जायेंगे। मनुष्य उनका आहार करेंगे। उन जीवो की हड्डियाँ और चमड़ी तिर्यंच चाट के रहेंगे। मनुष्यों की खोपड़ी में पानी भरकर उसे वे पीएँगे। इस काल में गति प्रायः नरक और तिर्यंच ही रहेगी। इसी प्रकार 21000 वर्ष पूर्ण होंगे। जो व्यक्ति दान-धर्म रहित, नमस्कार मंत्र रहित, प्रत्याख्यान रहित और सम्यक्त्व से रहित होगा, वह छट्ठे आरे में उत्पन्न होगा। इसलिए यह जानकर जो भी मनुष्य जैन धर्म का पालन करेगा एवं उसमें श्रद्धा रखेगा, वह जीव इस भवसागर से तरकर सुख को प्राप्त करेगा।

अवसर्पिणी काल के छह आरे का वर्णन समाप्त।

उत्सर्पिणी काल के छह आरे का वर्णन

उत्सर्पिणी काल वह समय है जिसमें जीवों के संघयण, संस्थान, आयुष्य, अवगाहना, उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ और पराक्रम क्रमशः बढ़ते जाते हैं। इसी प्रकार पुद्गल (पदार्थ) के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श भी उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होते जाते हैं। साथ ही शुभ भावनाएँ भी बढ़ती हैं।

पहला आरा

उत्सर्पिणी काल का पहला आरा, अवसर्पिणी काल के छट्ठे आरे के समान होता है। यह आरा 21,000 वर्ष का होता है। इसका नाम दुषम-दुषम होता है। यह आरा अत्यंत भयानक और कष्टदायक होता है। इसमें अन्य सभी भाव (विवरण) आगे बताये हुए छट्ठे आरे के समान ही होते हैं।

दूसरा आरा

उत्सर्पिणी काल का दूसरा आरा, अवसर्पिणी काल के पाँचवे आरे जैसा होता है। यह भी 21,000 वर्ष का होता है और दुषम नाम से जाना जाता है। छट्ठा आरा 21,000 वर्ष और उत्सर्पिणी का पहला आरा 21,000 वर्ष में जो रूक्षता और अशुभताएँ आई थीं, उन्हें दूर करने हेतु दूसरे आरे के प्रारंभ में सात-सात दिन की पाँच प्रकार की वर्षा होंगी - कुल 35 दिन तक वर्षा होगी।

पहले सात दिन पुष्करावर्त मेघ बरसेगा, जिसके कारण धरती की उष्णता दूर होगी, धरती ठंडी पडेगीं । दूसरे सात दिन क्षीर मेघ अर्थात् दूध समान जल बरसेगा, जिससे धरती की रूक्षता खत्म होगी। शुभ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श उत्पन्न होंगे। तीसरे सात दिन घृत मेघ अर्थात् घी जैसा जल बरसेगा जिससे धरती स्निग्ध होगी, उसमें चीकनाहट आयेंगी । चौथे सात दिन तक अमृत मेघ अर्थात् अमृत जैसा सफेद जल बरसेगा, जिससे बीजारोपण होगां और बीज अंकुरण योग्य बनेंगे। पांचवा और अंतिम सात दिनों में रस मेघ अर्थात् जिससे अंकुरित वनस्पतियों में रस उत्पन्न करे ऐसा पानी बरसेगा और पत्तियाँ, पुष्प और फल उत्पन्न होंगे।

इन पाँच प्रकार की वर्षाओं से धरती में पाँच गुण उत्पन्न होते है और धरती सुंदर बनेगी। बिलों में रहने वाले मनुष्य बाहर निकलेंगे और पुष्प, फल आदि से शोभित वनस्पतियों को देखकर मांसाहार न करने का नियम बनाएँगे।

इस आरे में कोई भी धर्म नहीं होगा, न ही साधु-साध्वियाँ होंगे। लोग असि (हथियार), मसि (लिखने की विद्या) आदि स्वयं सीखेंगे। चारों गतियों में जीव जा

सकेंगे। अन्य विवरण अवसर्पिणीकाल के पाँचवें आरे के समान ही जानना।

तीसरा आरा

उत्सर्पिणी काल का तीसरा आरा, अवसर्पिणी काल के चौथे आरे जैसा होता है। यह आरा एक क्रोडक्रोड़ी सागर में 42,000 वर्ष कम होता है। इसका नाम दुषम-सुषम होता है। इस आरे में 3 वर्ष और साढ़े आठ महीने बीतने के बाद, प्रथम नरक से निकलकर श्रेणिक महाराज का जीव प्रथम तीर्थंकर महापद्म स्वामी के रूप में जन्म लेगा। उनका आयुष्य 72 वर्ष (भगवान महावीर के समान) होगा। इसके बाद 22 तीर्थंकर, 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव और 9 प्रतिवासुदेव भी इसी आरे में होंगे।

चौथा आरा

यह आरा अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे जैसा होता है। यह आरा दो क्रोडाक्रोड़ी सागरोपम का होता है। इसमें 3 वर्ष और साढ़े आठ महीने बीतने के बाद 24वें तीर्थंकर का जन्म होगा उनका आयुष्य 84 लाख पूर्व वर्ष (भगवान ऋषभदेव के समान) होगा। 24वें तीर्थंकर शिल्पकला आदि की शिक्षा नहीं देंगे क्योंकि वह शिक्षा पूर्व से चली आ रही होगी। इसी आरे में 12वें चक्रवर्ती भी होंगे। 24वें तीर्थंकर के मोक्ष जाने के बाद बादर अग्नि, राजधर्म और चारित्र धर्म का विच्छेद हो जाएगा। इसके पश्चात एक क्रोड पूर्व वर्ष जितना संधिकाल पसार हो जाने के बाद पूरी तरह से अकर्म भूमि जैसा व्यवहार (जुगलिया काल) हो जाएगा।

पाँचवां और छट्ठा आरा

उत्सर्पिणी काल का पाँचवां और छट्ठा आरा, अवसर्पिणी के दूसरे और पहले आरे के समान होता है। इसका संपूर्ण विवरण जुगलिया भूमि जैसा जानना।

कालचक्र की व्यापकता:

यह कालचक्र केवल पाँच भरत और पाँच ऐरवत - इन दस मनुष्य क्षेत्रों में ही होता है। अकर्मभूमि के देवकुरु और उत्तरकुरु, इन दो क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के पहले आरे की शुरुआत जैसे भाव हंमेशा रहते हैं। हरिवास और रम्यकवास में दूसरे आरे की शुरूआत जैसे भाव सदा विद्यमान रहते हैं। हेमवय़ और हिरण्यवय क्षेत्रों में

अवसर्पिणी काल के 6 आरो का कोस्टक

क्रम	क्रम विवरण	पहला आरा	दूसरा आरा	तीसरा आरा	चौथा आरा	पाँचवाँ आरा	छट्ठा आरा
1	आरे का नाम	सुषम सुषम	सुषम	सुषम दुषम	दुषम सुषम	दुषम	दुषम दुषम
2	काल मान	4 क्रो.क्रो. सागर	3 क्रो.क्रो. सागर	2 क्रो.क्रो. सागर	1 क्रो.क्रो. सागर में 42,000 वर्ष कम	21,000 वर्ष	21,000 वर्ष
3	शुरूआत में देहमान	3 गाउ	2 गाउ	1 गाउ	500 धनुष	7 हाथ	2 हाथ
4	अंतिम भाग में देहमान	2 गाउ	1 गाउ	500 धनुष	7 हाथ	2 हाथ	1 हाथ
5	शुरूआत में आयुष्य	3 पल्य	2 पल्य	1 पल्य	1 क्रोड पूर्व का	100 वर्ष अधिक	20 वर्ष
6	अंतिम भाग में आयुष्य	2 पल्य	1 पल्य	1 क्रोड पूर्व	100 वर्ष अधिक	20 वर्ष	16 वर्ष
7	शुरूआत में पसलियां	256	128	64	32	16	8
8	अंतिम भाग में पसलियां	128	64	32	16	8	4
9	संघयण	वज्रऋषभनाराच	वज्रऋषभनाराच	वज्रऋषभनाराच/6	6	6	सेवार्त
10	संठान	समचतुरंस्र	समचतुरंस्र	समचतुरंस्र/6	6	6	हूंड
11	आहार इच्छा	3 दिन	2 दिन में	1 दिन में	हर रोज	हर रोज	हर रोज
12	आयुष्य का बंध कब	छह महिने पहले	छह महिने पहले	छह महिने पहले	कभी भी	कभी भी	कभी भी
13	संतान की प्रतिपालना	49 दिन	64 दिन	79 दिन	---	---	---
14	गति कौन कौन सी	देव	देव	देव /पांच	पांच	5/4	2
15	धरती की सरसाई	शक्कर	चीनी जैसी	गुड जैसी	अच्छी	कम अच्छी	कुंभार की निंभाडे
	अंतिम भाग में	चीनी	गुड जैसी	अच्छी	कम अच्छी	निंभाडे की राख जैसी	की राख जैसी

तीसरे आरे की शुरूआत जैसे भाव सदा रहते हैं। 56 अंतरद्वीपों में तीसरे आरे के अंतिम समय जैसे भाव सदा रहते हैं (जुगलकाल जैसे, कर्मभूमि जैसे नहीं)। महाविदेह क्षेत्र में चौथे आरे जैसे भाव सदा रहते हैं - अतः इन सभी क्षेत्रों में छह आरे या कालचक्र होते नहीं।

•धर्मकाल की गणना•

अवसर्पिणी काल में धर्मकाल एक क्रोडाक्रोड़ी सागर में 21000 वर्ष कम + 1 लाख पूर्व 3 वर्ष और साढ़े आठ महीने।

उत्सर्पिणी काल में धर्मकाल एक क्रोडाक्रोड सागर में 42,000 वर्ष कम + 84 लाख पूर्व 3 वर्ष और साढ़े आठ महीने।

अतः संपूर्ण एक कालचक्र में धर्मकाल सिर्फ दो क्रोडाक्रोड़ी सागर + 85 लाख पूर्व में कुल 62,992 वर्ष और 7 महीने कम होता है। (21000+42000-7 वर्ष और पांच महिने)

॥ इस प्रकार उत्सर्पिणी काल के छह आरों का वर्णन ॥

इति छह आरा के भाव समाप्त

(सिर्फ समझ के लिए, परीक्षा में नहीं पूछा जाएगा)

जुगलिया और कल्पवृक्ष का वर्णन : जुगलिया की विशेष जानकारी

जुगलिक क्षेत्र में इस प्रकार से होता हैं: (1) उनका शरीर आकर्षक, बलवान तथा स्वर मधुर होता है। (2) वे शांत प्रकृति, मंद कषाय वाले, सरल, नम्र, विनयी और भद्रिक होते हैं। (3) उनके क्षेत्र में कल्पवृक्षों के फलों का आहार होता है, जो चक्रवर्ती के भोजन से भी अधिक मधुर होते हैं। (4) वहाँ सोना, चाँदी, हीरा, माणिक्य, रत्न आदि होते हैं। (5) माता-पिता, भाई-बहन, मित्र, संबंधी आदि होते हैं। (6) गाय, भैंस, बैल आदि स्थलचर और खेचर प्राणी भी जुगलिक होते हैं। (7) जुगलिक एक स्थान से दूसरे स्थान पैदल जाते हैं। (8) सिंह, बाघ आदि हिंसक जानवर भी होते हैं। (9) गेहूँ, बाजरा आदि अनाज स्वतः उत्पन्न होते हैं। 10. उस क्षेत्र में वर्षा होती है।

जुगलिक क्षेत्र में ये नहीं होता: (1) शरीर कभी वृद्ध नहीं होता, उसमें मैल या पसीना नहीं आता। (2) असि (हथियार), मसि (लिपि), कृषि या अन्य व्यापार

नहीं होते। (3) गाँव, नगर, घर, दुकान जैसी कोई संरचना नहीं होती। (4) राजा-प्रजा, पदवी, सम्मान, ऊँच-नीच, सेवक आदि की कोई व्यवस्था नहीं होती। (5) भोजन पकाना, धोना, नृत्य, मकान निर्माण जैसी 72 कलाएँ नहीं होतीं। (6) सोना-चाँदी आदि का उपयोग नहीं होता। (7) संबंधियों के प्रति तीव्र राग या आसक्ति नहीं होती। (8) विधिपूर्वक विवाह, नैवेद्य, पूजा या कुलदेवी की परंपरा नहीं होती। (9) कोई त्योहार, उत्सव, लौकिक या धार्मिक अभ्यास नहीं होते। (10) प्राणियों का उपयोग न वाहन के रूप में होता है, न दूध हेतु। (11) वाहन नहीं होते। (12) हिंसक पशु किसी को कष्ट नहीं पहुँचाते, न मांसाहार करते हैं। (13) मच्छर, जूँ, टिड्डी, मक्खी जैसे जीव का उपद्रव नहीं होता। (14) गेहूँ-बाजरा जैसे अनाज का उपयोग भोजन हेतु नहीं होता। (15) बादर अग्नि, चूल्हा, भट्टी, सिगड़ी आदि युगलिक क्षेत्र में नहीं होते।

दस प्रकार के कल्पवृक्ष (सिर्फ समझ के लिए, परीक्षा में नहीं पूछा जाएगा):

दस कल्पवृक्ष जो सामान्य वृक्ष जैसे होते हैं, बादर वनस्पतिकाय होते हैं और सचित होते हैं। ये कल्पवृक्ष पाँच भरत, पाँच इरवत क्षेत्र में अवसर्पिणीकाल के पहले तीन आरों में और उत्सर्पिणीकाल के अंतिम तीन आरों में होते है। हेमवय, हिरण्यवय, हरिवास, रम्यक्वास, देवकुरु, उत्तरकुरु तथा 56 अंतर्द्वीपों में सदा विद्यमान रहते हैं। इनके रस और गुण आरे व क्षेत्र के अनुसार घटते-बढ़ते हैं, परंतु ये सामान्य फलों से अनगिनत गुना श्रेष्ठ, स्वादिष्ट और रसवाले होते हैं।

1. मतंगा - इस वृक्ष के अंग(अवयव) मधुर रसयुक्त होते हैं, जिनसे शरीर पुष्ट होता है।
2. भिंगा - इस वृक्ष के फल, फूल, पत्ते आदि अलग-अलग बर्तन जैसे आकार के होते हैं और रत्नजडित होते हैं।
3. तुडीयंगा- इस वृक्ष के अंग 49 प्रकार के सुर सुनाते हैं। हवा के स्पर्श से पत्तियाँ-फल टकराते हैं और सुंदर स्वर निकलते हैं।
4. दीपशिखांग - इस वृक्ष के अंग रत्नजडित दिपक जैसे होते हैं, जो दिपक जैसा प्रकाश देते है।
5. ज्योतिशिखांग - इस वृक्ष के अंग सूर्य या अग्नि के समान ताप देने वाले होते हैं, पर इनके ताप से आँखों में जलन नहीं होती।
6. चितंगा - इस वृक्ष के अंग फूलों की मालाओं जैसे होते हैं और इन की पत्तिर्यां, फुल आदि पर सुंदर चित्र होते हैं।

7. चित्तरसा - यह वृक्ष मनपसंद स्वादयुक्त आहार देते है, इनके फल, फुल, पत्ते स्वादिष्ट होते है। वे भोजन के काम में आते है। जिसे पकाना नहीं पड़ता।

8. मणियंगा - इस वृक्ष के अंग आभूषणों के देने वाले होते है। सोना, चांदी, मणिरत्न के विविध प्रकार के आभूषण जैसे होते हैं, जिन्हें पहना जा सकता है।

9. गेहागारा - यह वृक्ष अलग अलग आकार के घर-मकान के रूप में होते हैं, जो हवेली/ बंगले, महलों से भी सुंदर आकृति वाले होते है। आकर्षक एवं अंदर सुंदर चित्र वगेरे भी होते है।

10. अनिगणा - अनग्न नाम के वृक्ष। इस वृक्ष के अंग वस्त्र देने वाले होते है। इसके फल, फूल, पत्ते रंग-बिरंगे, हल्के, सुगंधित एवं डीझाईन वाले वस्त्रों जैसे होते हैं।

3. पूज्य साधु-साध्वीजी को गौचरी (आहार) बहराने की समझ:

पंचमहाव्रत को धारण करने वाले साधु-साध्वीजी की आहार-पानी लेने की विधि को गौचरी कहते है। तिर्थंकर की आज्ञा अनुसार गौचरी बहराने से पहले, देते समय और बाद में भी किसी भी जीव की हिंसा न हो-इसका ध्यान रखना चाहिए। साथ ही निर्दोष आहार-पानी बहराने की भावना वालों को निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:

पू. साधु-साध्वीजी पधारें उससे पहले इतना ध्यान रखें:

1.पूज्य साधु-संतों के नियमित दर्शन के लिए जाए और अपने घर की माहिती दे एवं अन्य श्रावकों के घर भी बताएँ। अथवा गोचरी के घर बताने वाले को अपने घर की माहिती दे।

2.गौचरी के समय घर का दरवाज़ा खुला रखें। उस समय कोई छह काय जीवों के हिंसात्मक कार्य न करें। आंगन या रूम धोना नहीं वगेरे...

3.भोजन करने से पहले पू. संतों को बहराने की भावना करें।

4.पू. संतो को बहराने की सही समझ रखें। खूद सूझते हो तो अवश्य बहराने का लाभ लें। सचित और अचेत वस्तुएँ अलग रखें। सूझती, निर्दोष चीजें कहा रखी है उसका ध्यान रखें।

5.कच्चे पानी के छींटे, हरी वनस्पति, सब्ज़ियों का कचरा, फलों के बीज या छिलके आदि घर में बिखरे न हों। चलते समय सचित वस्तु बाधा न डाले - इसका ध्यान रखें।

6. संतों को देखकर गैस, पंखा, टी.वी., या बिजली के उपकरण बंद न करें।

जब पूज्य साधु-साध्वी घर पधारें तब इतना ध्यान रखें:

सचित-अचित का भेद:

वह पदार्थ जिसमें एकेंद्रिय से लेकर पंचेंद्रिय तक किसी भी प्रकार का जीव हो, उसे सचित कहते हैं।

वह पदार्थ जिसमें कोई भी जीव न हो, जो अग्नि या शस्त्र से निर्जिव हो गया हो या स्वभाव से ही निर्जिव हो, वह अचित कहलाता है। ऐसे अचित पदार्थ साधुसंतोको

बहराने योग्य होने से उनको सूझते पदार्थ कहते हैं।

अचित पदार्थों को स्पर्श करनेवाला व्यक्ति सूझता कहलाता है। सचित पदार्थ को स्पर्श करनेवाला व्यक्ति असूझता कहलाता है। सचित वस्तु के स्पर्श से असुझता होता हैं। सचित पदार्थ साधु-संतों को बहराने योग्य न होने के कारण उसे असूझता पदार्थ कहते है।

बहराते समय विशेष नियम: (1) जब पूज्य साधु-साध्वीजी घर पधारें, तो "पधारो-पधारो" कहकर विनम्रता से 7-8 कदम तक आगे बढ़कर स्वागत करें। गौचरी देकर लौटते समय भी उन्हें 7-8 कदम तक विदा देने जाएँ। आवश्यकता हो तो गौचरी के अन्य घर भी दिखाएँ। (2) पूज्य साधु-साध्वीजी जब पधारें, तब असूझते आहार-पानी या व्यक्ति को न छुएँ। (3) असूझती वस्तु ग्रहण करने वाले व्यक्ति ने न तो गौचरी हेतु निमंत्रण देना चाहिए और न ही सूझते आहार-पानी को स्पर्श करना चाहिए। सूझते आहार देनेवाले को भी न छुएँ और उससे दूर रहें। (4) यदि कोई बात समझ में न आए तो संतो से पूछकर ही वस्तु लेनी/रखनी चाहिए, लेकिन उतावला व्यवहार न करें। (5) यदि गौचरी के समय भोजन तैयार न हो या घर के बड़े उपस्थित न हों, तो भी सुपात्रदान का लाभ नहीं छोड़ना चाहिए। घी, गुड़, शक्कर आदि बहराकर सुपात्रदान का लाभ लें। (6) पू. साधु-साध्वीजीको आधाकर्मी याने की उनके निमित्त से छकाय जीवो की हिंसा करके आहार - पानी बनाया हो तो, वह बहराना नहीं। साधु निमित्त ज्यादा आहार न बनाए, श्रावक को अपने लिए बनाए गए आहारमें से ही साधु को बहराना चाहिए। (7) क्रीतकृत अर्थात् साधु के निमित्त कोई वस्तु खरीदी गई हो तो वह नहीं बहरानी चाहिए। श्रावक ने अपने लिए या परिवार हेतु वस्तु खरीदी हो वही बहरानी चाहिए। (8) साधु के आने की संभावना जानकर, विशेष रूप से ज्यादा या जल्दीसे आहार बनाकर

देना अनुचित है। (9) श्रावक स्वयं रात्रिभोजन का त्यागी होना चाहिए और सूर्यास्त से पूर्व भोजन पकाना चाहिए। (10) यदि सचित वस्तु पर अचेत वस्तु रखी हो ऐसी संघट्टा वाली, या अचित पर सचित, या दोनों मिश्रित हों, या पुरी अचित न हुई हो ऐसी वस्तु नहीं बहरानी चाहिए। (11) गीले आंगन में खड़े होकर गौचरी नहीं बहरानी चाहिए। (12) वह वस्तु जो गाय, कुत्ते आदि तिर्यंच के लिए रखी हुई हो। देव-देवी, नैवेद्य, बलि की वस्तुएँ हो, या दान, श्राद्ध, बावा-साधु आदि के लिए रखी गई हो - वह नहीं बहरानी चाहिए। (13) बहराते समय या बाद में सचित पानी से हाथ धोना नहीं चाहिए। हाथ कपड़े से पोंछ लें। जिस चमच या बर्तन से बहराया हो, उसे न धोएँ बल्कि अन्य कार्यों में उपयोग करें। बहराने के बाद आहार कम पड़ जाए तो नया आहार न बनाकर घर में जो भी अल्पाहार हो, उसी से काम चलाएँ। (14) यदि कोई वस्तु शिशु या गर्भवती के लिए विशेष रूप से बनाई गई हो तो उसके उपयोग से पहले साधु को न बहराए। वह उपयोग कर ले, उसके बाद बचा हो तो बहरा सकते है। (15) यदि गर्भ का सातवां महीना शुरू हो गया हो, तो गर्भवती स्त्री को शरीर को कष्ट पहुँचाकर गौचरी नहीं देनी चाहिए। यदि माँ बालक को दूध पिला रही हो, तो उसे छोड़कर गौचरी देना अनुचित है। अपंग व्यक्ति को भी यदि परिश्रम करना पड़े, तो गौचरी न बहराए। (16) वह वस्तु जो बहुत ऊपर रखी हो, और जिसे उतारने में कष्ट हो - ऐसी वस्तुएँ नहीं बहरानी चाहिए। (17) अलमारी के खाने में यदि किसी कागज़ पर सचित वस्तु पड़ी हो और पास में सूझती वस्तु रखी हो, तो वह असूझती मानी जाएगी। इसलिए अचित वस्तुएँ अलग रखनी चाहिए। (18) जब पूज्य साधु-साध्वीजी पधारें, उस समय कच्चा नमक, पानी, अग्नि, वनस्पति आदि सचित वस्तुओं के संपर्क से व्यक्ति असूझता हो सकता है - ऐसी स्थिति में गौचरी नहीं बहरानी चाहिए।

गौचरी का निष्कलंक आयोजन- धर्म की साधना: इस प्रकार अतिथि संविभाग नामक श्रावक के बारहवे व्रत की आराधना पूज्य साधु-साध्वीजी को 14 प्रकार के निर्दोष दान देकर होती है।

आहारके दोषमें से बहरानेवाले गृहस्थ दोषयुक्त आहार दे तो दोष लगता है, अतः सावधानी से निर्दोष गौचरी बहरानी चाहिए। निर्दोष आहार पानी आदि देनेवाले को संयमी की अनुमोदना तथा कर्म निर्जरा का विशेष लाभ प्राप्त होता है।

1. भगवान ऋषभदेव

(तीर्थंकर चरित्र एवं जैन धर्म का मौलिक इतिहास)

तृतीय आरे के 84 लाख पूर्व 3, वर्ष और साढ़े आठ महीने शेष थे, तब आषाढ़ वदी चतुर्दशी के दिन, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में, सर्वार्थसिद्ध महाविमान से 33 सागर की आयु पूर्ण करके भगवान ऋषभदेव का जीव कुलकर नाभिराय की पत्नी मरुदेवी के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भ में आते ही तीनों लोकों में सुख और प्रकाश फैल गया। मरुदेवी माता ने 14 स्वप्न देखें। नाभि कुलकर ने स्वयं की सहज बुद्धि से कहा, " आपको ऐसा पुत्र होगा जो महान कुलकर बनेगा।" वास्तव में गर्भस्थ जीव भविष्यमें तीर्थंकर होने वाला था। भगवान के च्यवन और गर्भधारण से इन्द्रों के आसन चलायमान हुए। अवधिज्ञान से इसका कारण जानकर सभी इन्द्र मरुदेवी माता के पास पहुँचे और 14 स्वप्नों का सही अर्थ बताकर कहा, "आपके गर्भ में जो जीव है, वह 14 राजलोक का स्वामी और तीर्थंकर होगा।"

गर्भ के प्रभाव से मरुदेवी के शरीर की शोभा, कांति और लावण्य बढ़ने लगे। नाभिराय की ऋद्धि, यश और प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी। गर्भकाल पूर्ण होने पर फाल्गुन वदी अष्टमी के दिन उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में मरुदेवी की कुक्षि से एक युगल का सुखपूर्वक जन्म हुआ।

बाल प्रभु और माता की शुद्धि (शुचि) 56 दिशाकुमारी देवियों ने की। इन्द्र का आसन चलायमान हुआ, तब अवधिज्ञान से प्रभु का जन्म जानकर 'हरिणैगमैषी' देव ने "सुघोषा" महाघंट बजाकर नाद किया और सभी देव-देवियों को मध्यरात्रि में जन्म महोत्सव में आने का निमंत्रण दिया। मरुदेवी माता को निद्रित कर, भवनपति के 20, वाणवंतर के 32, ज्योतिषी के 2 तथा वैमानिक के 10 - ऐसे कुल 64 इन्द्र अपने-अपने परिवार सहित प्रभु का जन्म महोत्सव मेरु पर्वत पर मनाने आए। (भरत, ऐरवत और महाविदेह क्षेत्रों में सभी तीर्थंकरों का जन्म महोत्सव इसी प्रकार मध्यरात्रि में मनाया जाता है।)

सौधर्मेन्द्र ने भगवान के हाथ के अंगूठे में विविध अमृतमय रसयुक्त नाड़ियों का संक्रमण किया, जिससे अंगूठा चूसते ही उनकी भूख शांत हो जाए। (क्योंकि

बाल तीर्थंकर माता का स्तनपान नहीं करते हैं, इसलिए यह व्यवस्था प्रत्येक तीर्थंकर के लिए की जाती है।)

प्रभु की जाँघ पर वृषभ का चिह्न था और माताने 14 स्वप्नों में प्रथम स्वप्न ऋषभ का देखा था, इसलिए उनका नाम "ऋषभ" और बालिका का नाम "सुमंगला" रखा गया। जब प्रभु केवल एक वर्ष के थे, तब सौधर्मेन्द्र कर्मभूमि में आदि तीर्थंकर वंश की स्थापना हेतु एक गन्ने का सांठा लेकर आए। बाल ऋषभदेव ने अवधिज्ञान से इन्द्र के मन के भाव जानकर अपना हाथ बढ़ाया और उस गन्ने का सांठा स्वीकारा। इस तरह इक्ष्वाकु वंश की स्थापना हुई।

भगवान का शरीर वज्रऋषभनाराच संघयनवाला तथा समचतुरंस्र संस्थानवाला था। उनका संपूर्ण शरीर सिर से पैर तक अत्यंत सुंदर एवं लक्षणयुक्त था। उनके साथ खेलने कई देव बाल रूप धारण कर आते थे और खेलते थे। अंगूठा चूसने की अवस्था बीतने के बाद ऋषभदेव देवकुरु और उत्तरकुरु नामक अकर्मभूमि से देवो द्वारा लाए गए कल्पवृक्षों के फलों का ही भक्षण करते थे, क्योंकि उस समय सभी लोग फलाहार करते थे। भोजन पकाने हेतु आवश्यक बादर अग्नि का अस्तित्व ही नहीं था और अन्न पकाने की विधि कोई जानता नहीं था। वे क्षीर समुद्र के जल का पान करते थे।

उसी समय, एक अन्य बाल युगल ताड वृक्ष के नीचे खेल रहा था। दुर्भाग्यवश, वृक्ष का एक बड़ा फल बालक पर गिरा और उसकी मृत्यु हो गई। बालिका अकेली रह गई। माता-पिता उसे साथ ले गए और नाम सुनंदा रखा। परंतु माता-पिता भी कुछ ही दिनों में मृत्यु को प्राप्त हुए। अब वह बालिका अकेली होकर इधर-उधर भटकने लगी। तब कुछ युगल उसे कुलपति नाभिराय के पास लाए। नाभिराय ने उसे भगवान ऋषभदेव की भावी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया।

जब भगवान युवा हुए, तब सौधर्मेन्द्र ने उन्हें विवाह योग्य जानकर सुनंदा और सुमंगला का हाथ ऋषभदेव को सौंपा और उनके विवाह के माध्यम से विवाह की परंपरा का प्रारंभ किया। इस विवाह में अनेक इन्द्र तथा देव-देवियाँ उपस्थित थे। पूर्व संचित कर्म के अनुसार, अनासक्त भाव से भोगों को भुगतते हुए सुमंगला की कुक्षि से जुगल संतान - पुत्र भरत और पुत्री ब्राह्मी का जन्म हुआ। सुनंदा की कुक्षि से पुत्र बाहुबली और पुत्री सुंदरी का जन्म हुआ। तत्पश्चात सुमंगला ने क्रमशः 49 जुगल पुत्रों (कुल 98 पुत्रों) को जन्म दिया।

तृतीय आरे के अंत से युग परिवर्तन

तृतीय आरा के शेष भाग में अब जुगलकाल समाप्त होने को था, अतः कल्पवृक्षों का प्रभाव क्षीण होने लगा। जब कल्पवृक्ष कम फल देने लगे, तब जुगलिकों में कषाय की भावना ने जन्म लिया। उन्हें सुधारने हेतु तीन प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती थीं -

1. हकार: "हाँ, आप गलत कार्य कर रहे हो।"
2. मकार: "नहीं, आप ऐसा कार्य मत करो।"
3. धिक्कार: " आपने गलत कार्य किया, आपको धिक्कार है।"

इस पद्धति से दोषी को सजा दी जाती थी और उसे शर्म आती जिससे सुधार होता, लेकिन समय के साथ यह पद्धति भी निष्प्रभावी होती गई। तब भगवान ऋषभदेव ने अपने अवधिज्ञान से जाना कि अब कर्मभूमि जैसी व्यवस्था की आवश्यकता है। उन्होंने शासन व्यवस्था, सैनिक शक्तियों की स्थापना और एक शासक की आज्ञा का पालन करने की अनिवार्यता की बात सभी को समझाई। नाभिकुलकर की आज्ञा और सर्वसम्मति से भगवान ऋषभ को राजा नियुक्त किया गया। सौधर्म देवलोक के शक्रेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। अवधिज्ञान से राज्याभिषेक का समय जानकर उन्होंने विनिता नगरी की रचना की और वहीं ऋषभ राजकुमार का राज्याभिषेक कर उसे राजा बनाया। उस समय भगवान की आयु 20 लाख पूर्व वर्ष थी। वे इस अवसर्पिणी काल के प्रथम राजा बने।

काल के प्रभाव से मनुष्यों के भावों में भी क्लेश आ गया था। इसलिए राज्य की रक्षा हेतु राजा ऋषभ ने मंत्री, सैनिक, घुड़सवार सेना, पैदल सेना, हाथी-दल, रथसेना आदि की नियुक्ति की। उन्होंने गाय, भैंस, बैल आदि पशुओं का पालन और उनका उपयोग करना सिखाया। लोग कच्चा अनाज खाते थे, उसमें से कचरा निकालकर और भिगोकर खाने की प्रणाली सिखाई। एक दिन वृक्ष की डालियाँ रगड़ने से अग्नि उत्पन्न हुई। तब भगवान ने मिट्टी के पात्र बनाकर उसमें पकाकर भोजन बनाना सिखाया। इसी से कुंभार की शिल्पकला का आरंभ हुआ। इसके बाद उन्होंने वस्त्र निर्माणकला, केशकला, चित्रकला इत्यादि पुरुषों की 72 कलाएँ अपने पुत्र भरत को सिखाईं, भरत ने वे कलाएँ अपने भाइयों और पुत्रों को सिखाई। पुत्री ब्राह्मी को दाहिने हाथ से 18 प्रकार की लिपियाँ, और पुत्री सुंदरी को बाएँ हाथ से गणित, तौल, माप इत्यादि सिखाया। इस प्रकार स्त्रियों की 64 कलाएँ सिखाई, जिसे

दोनों बहनों ने लोगों को सिखाई। यद्यपि ये क्रियाएँ सावद्य हैं, फिर भी कर्म के उदय के अनुसार अपने दायित्व का पालन करने हेतु यह प्रवृत्ति ऋषभ राजा ने की। उसके बाद (1) उग्रकुल - अधिकारी व सेना, (2) भोगकुल - पुरोहित वर्ग, (3) राजकुल -परिवार के सदस्य, (4) क्षत्रियकुल- शेष समाज, इन चार प्रकार के कुल की रचना की। विवाह की परंपरा भी भगवान के विवाह विधि के अनुसार समाज में प्रचलित हुई।

भगवान को वैराग्य की प्राप्ति-

एक बार विनिता नगरी में वसंतोत्सव मनाया जा रहा था। लोगों की मोहलीला, नृत्य, हास्य, गान आदि विकारवर्धक क्रियाओं को देखकर प्रभु चिंतन में डूब गए। पूर्व भव में देव रूप में भुगते हुए देवों के सुख तथा मनुष्य रूप में पालन किया गया चारित्र का उन्हें स्मरण हुआ। मोह के कडवे फल के विचार करते-करते प्रभु को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उनमें विरक्त भाव जगा। तब ब्रह्म देवलोक के अंत में स्थित नव लोकांतिक देवों के स्वामी भगवान के पास आए और निवेदन किया: "प्रभु! बहुत समय से भरत क्षेत्र में नष्ट हुए मोक्षमार्गरूप धर्मतीर्थ का पुनः प्रवर्तन करके भव्य जीवों पर उपकार करें। आपने लोकव्यवस्था के माध्यम से सांसारिक उपकार किया, अब धर्मतीर्थ का प्रसार कर परमसुख का मार्ग बताईए।"

राज्य त्याग और वर्षीदान का प्रारंभ-

प्रभु ने अपने पुत्रों को बुलाकर राज्य विभाजित किया- भरत को राजगद्दी सौंपी, शेष 99 पुत्रों को योग्यतानुसार राज्य सौंप दिए। फिर भगवान ने सांवत्सरिक दान- वर्षीदान का शुभारंभ किया। इन्द्र के आदेश से कुबेर देवने जृंभक देवों को भेजा, जिन्होंने वन, बाग, जलाशय, पर्वत, श्मशान आदि में छिपा (निजी स्वामित्व रहित) द्रव्य निकालकर भगवान के भंडार में समर्पित किया।

जिसका भगवान ने दान दिया-

प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख सोने की मुद्राएँ, इस प्रकार एक वर्ष में 388 करोड़ 80 लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान किया। (यह वर्षीदान सभी तीर्थंकर करते हैं।)

दीक्षाअंगीकार-

एक वर्ष बाद फाल्गुन वदी अष्टमी, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र को शक्रेन्द्र का आसन चलायमान हुआ और उन्हों ने आकर भगवान का दीक्षाभिषेक किया। भगवान 'सुदर्शन' नामक शिबिका में बिराजमान हुए। पहले मनुष्यों ने और फिर देवों ने शिबिका उठाई। 'सिद्धार्थ' नामक उपवन में अशोकवृक्ष के नीचे शिबिका से

उतरकर भगवान ने अपने आभूषण और वस्त्र त्याग दिए। इन्द्र ने एक देवदूष्य वस्त्र भगवान के कंधे पर रखा। प्रभु ने चार मुष्ठि लोच (केश उखाड़ना) किया। उनके बालों को शक्रेन्द्र ने अपने वस्त्र में ग्रहण किये।

छठ्ठ के तपस्वी ऋषभ ने देवों और मनुष्यों की उपस्थिति में सिद्धों को नमस्कार किया और कहा: "मैं आज से जीवन भर सभी पापकारक प्रवृत्तियों का त्याग करता हूँ।" ऐसा कहते हुए उन्हों ने सामायिक नामक पहला चारित्र (दीक्षा) अंगीकार किया। इस क्षण नारकी के जीवों को क्षणिक शांति प्राप्त हुई। प्रभु के साथ 4,000 राजाओं ने भी अनुकरण करते हुए दीक्षा ली। भगवान को जन्म से ही तीन ज्ञान - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान तो थे ही और दीक्षा लेते ही चौथा - मनःपर्यवज्ञान प्रगट हुआ। (यह ज्ञान सभी तीर्थंकरों को दीक्षा लेते ही प्रगट होता है।) शोकातुर परिवार जन महल लौटे। सभी देव और इन्द्र भी अपने-अपने देवलोक में चले गए।

गौचरी का प्रथम प्रसंग और एक वर्ष का तप-

भगवान ऋषभदेव के साथ कच्छ और महाकच्छ आदि सभी मुनियों ने विहार किया। भगवान ने अब मौन व्रत धारण कर लिया था। छठ्ठ तप के पारणे के दिन वे गौचरी के लिए नगर में पधारें, लेकिन उस समय वे तीसरे आरे के प्रथम साधु थे - अतः लोग गौचरी की विधि से पूर्णतः अनभिज्ञ थे। लोग उन्हें अपने राजा समझकर, उन्हें हाथी, घोड़े, सुंदर कन्याएँ, हीरे-मोती, बहुमूल्य वस्त्र आदि भेंट करते, परंतु किसी ने उन्हें आहार-पानी के लिए नहीं पूछा। इसलिए वे पुनः स्वस्थान लौट आए। उनके साथ अनुकरण कर स्वयं दीक्षा ग्रहण किए अन्य राजायें भी लौट आए।

आहार किए बीना बहुत दिन बीत चुके थे। समझ से अज्ञान ऐसे अन्य राजासंतो से भूख की पीड़ा सहन नहीं हो रही थी। राज्य भरत को सौंपा जा चुका था, इसलिए वापस जाना भी संभव नहीं है ऐसा सोचकर वन में उपलब्ध फल, कंद, मूल आदि खाने लगे, वल्कल से (वृक्षों की छाल से) शरीरको ढांकने लगे, जटाएँ रखने लगे इत्यादी प्रवृत्ति करने लगे। यहीं से जटाधारी आदि पाखंडी के 363 भेदों की शुरुआत हुई।

गौचरी प्राप्ति, केवलज्ञान और मोक्ष-

एक वर्ष से भूखे ऋषभदेव, मौनरूप से विचरण करते हुए हस्तिनापुर नगर में

पधारे। उस नगर में बाहुबली के पौत्र और सोमप्रभ राजा के पुत्र श्रेयांस कुमार रहते थे। उन्हों ने रात में स्वप्न देखा कि सुनहरा मेरु पर्वत अंशिक रूप से काला हो गया है। इस पर्वतराज को उन्होंने दूध से अभिषेक कर उज्ज्वल किया।

उसी रात उसी नगर में स्थित सुबुद्धि शेठने स्वप्न देखा कि सूर्य से निकले हज़ारों किरणों को श्रेयांस कुमार ने पुनः सूर्य में विलीन कर दिया - जिससे सूर्य और अधिक प्रकाशमान हो गया।

सोमप्रभ राजा ने स्वप्न देखा कि अनेक शत्रुओं से घिरे राजा को उनके पुत्र श्रेयांस की सहायता से विजय प्राप्त हुई। सुबह इन तीनों ने आपस में अपने-अपने स्वप्न की चर्चा की, परंतु स्वप्न का क्या परिणाम होगा उसका कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकें।

इसी समय प्रभु ऋषभदेव, श्रेयांस कुमार के द्वार पर गौचरी के लिए पधारें। श्रेयांस कुमार ने वंदन नमस्कार किये और प्रभु को एकटक देखने लगे। उन्हें लगा - "मैंने इस महापुरुष को पहले कहीं देखा है।" इसी चिंतन में उन्हें जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उन्होंने देखा कि पूर्वभव में ऋषभदेव वज्रनाभ चक्रवर्ती थे और जब उन्होंने दीक्षा ली थी, तब उनके पीछे उन्होंने भी दीक्षा अंगीकार की थी। इस जन्म में वे मेरे प्रपितामह हैं। ऐसा सोच रहे थे, उसी समय कोई व्यक्ति गन्ने के रस के घड़े भेंटस्वरूप दे गया। जातिस्मरण ज्ञान के कारण गौचरी वहोराने की विधि का स्मरण हो आया, श्रेयांस कुमार ने प्रभु के करपात्र में गन्ने का रस अर्पित किया। इस प्रकार छट्ठ से शुरू हुआ ऋषभदेव के तप का पारणा एक वर्ष पश्चात संपन्न हुआ। तब आकाश में पाँच दिव्य प्रकट हुए: (1) सोने की मुद्राओं की वर्षा, (2) पाँच रंगों के पुष्पों की वर्षा, (3) वस्त्रों एवं ध्वजा का आकाश में लहराना, (4) देव दुंदुभियों का दिव्य नाद, (5) देवों द्वारा 'अहोदानं' का दिव्य घोष।

भगवान 1000 वर्षों तक मौन के साथ अनेक प्रकार के तप और अभिग्रह करते हुए विचरण करते रहें। प्रभु विनिता नगरी के पुरिमताल उपनगर में शकटमुख उद्यान में ध्यानस्थ हुए। धर्मध्यान की धारा आगे बढती चली। प्रभुने अपूर्वकरण करके, शुक्लध्यान के पायों पर ध्यान करते हुए, पहले मोहनीय कर्म का क्षय किया, फिर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय - इन तीनों घातिकर्मों का एकसाथ क्षय कर महा वदी एकादशी के दिन जब चंद्र उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में आया तब प्रातः काल प्रभु को तीनों काल के सभी भावों को जानने वाला केवलज्ञान और

केवलदर्शन प्रगट हुआ। नारकी जीवों को अल्पकालिक सुख अनुभव हुआ। देवों ने उनका केवलज्ञान महोत्सव मनाया।

राज्य, तप, मोक्ष और शासनकाल-

भगवान ऋषभदेव 20 लाख पूर्व वर्ष तक युवावस्था में रहें, 63 लाख पूर्व वर्ष राज किया, 1000 वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था सह एक लाख पूर्व वर्ष तक संयम पालन किया। वे पौष वदी 13 के दिन मोक्ष (निर्वाण) को प्राप्त हुए। तृतीय आरे के 3 वर्ष, 8 मास और 15 दिन शेष थे, तब उन्होंने सिद्धगति को प्राप्त किया।

भगवान ऋषभदेव का धर्म-परिवार-

84 गणधर, 84,000 साधु, 3 लाख साध्वीजी, 3,05,000 श्रावक, 5,54,000 श्राविका, 20,000 केवलज्ञानी, 12,650 मनःपर्यवज्ञानी, 9,000 अवधिज्ञानी, 4,750 चौदा पूर्वधर साधु थे। उनका शासन 50 लाख क्रोड सागरोपम तक चला। इस काल में असंख्य साधु-साध्वियों ने मोक्ष प्राप्त किया।

अपेक्षित प्रश्न :

1. भगवान ऋषभदेव का जन्म कहाँ और कब हुआ?
2. जन्माभिषेक महोत्सव का वर्णन कीजिए।
3. तीर्थंकर के अंगूठे में कौन-सी शक्ति होती है?
4. इक्ष्वाकु वंश की स्थापना कैसे हुई?
5. ऋषभदेव बाल्य एवं युवावस्था में कौन-सा आहार करते थे?
6. ऋषभदेव ने सुनंदा को पत्नी क्यों बनाया?
7. हकार, मकार और धिक्कार का क्या अर्थ है?
8. भगवान ने किसे कौन-कौन सी कलाएँ सिखाई? कितने और कौन से कुल की रचना की?
9. वैराग्य के समय प्रभु के पास कौन आया और क्या निवेदन किया?
10. वर्षीदान क्या होता है? ऋषभदेव ने कितना दिया?
11. जिन लोगों ने ऋषभदेव के साथ दीक्षा ली, वे क्या करते थे?
12. भगवान को प्रथम आहार कैसे और किसके हाथों से मिला? किसकी वृष्टी हुई?
13. भगवान ऋषभदेव का धर्म-परिवार लिखिए।
14. भगवान का शासन कब तक चला?

2. कामदेव श्रावक

(श्री उपासक दशांग सूत्र)

चंपानगरी में कामदेव नामक एक श्रेष्ठ गृहस्थ (गाथापति) रहते थे। उनकी पत्नी का नाम भद्रा था। कामदेव के पास 6 करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ भंडार में, 6 करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ व्यापार में, और 6 करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की अन्य वस्तुए थी।

उनके पास 60,000 गायों का विशाल गौकुल था। वे अत्यंत धनाढ्य और सुखी थे। अनेक राजाओं एवं व्यापारियों के लिए सलाहकार, निर्णायक और सम्माननीय स्थान रखते थे। वे परिवार के मुखिया समान और हर कार्य में अग्रणी थे।

भगवान महावीर का आगमन और श्रावकधर्म अंगीकार

एक बार श्रमण भगवान महावीर स्वामी चंपानगरी के पूर्णभद्र चैत्य में पधारे। चंपा के राजा जितशत्रु और कामदेव, दोनों ही पदयात्रा कर भगवान के दर्शन एवं धर्म श्रवण हेतु आए। भगवान को तीन प्रदक्षिणा और वंदन कर, धर्मदेशना सुनकर अत्यंत आनंदित हो गए। हर्षित होकर भगवान से बोले: "हे भगवंत! मैं निर्ग्रंथ प्रवचन में श्रद्धा, विश्वास, रुचि और आदर रखता हूँ। परंतु गृहत्याग कर दीक्षा लेने असमर्थ हूँ। अतः मैं आपसे पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे कुल बारह व्रतों को ग्रहण करना चाहता हूँ।"

फिर कामदेव और उनकी पत्नि भद्रा, दोनों ने भगवान महावीर से बारह व्रत धारण किए। तत्पश्चात कामदेव श्रावक नव तत्त्वों के ज्ञाता बन गए। साधु भगवंतो को 14 प्रकार के निर्दोष दान देकर धर्ममय जीवन व्यतीत करने लगे। धर्म पालन करते-करते 14 वर्ष हो गए, एक रात कामदेव धर्म-जागरण कर रहे थे। उन्हें विचार आया कि अब संसार-कार्य से निवृत्ति ले लेनी चाहिए। इसलिए उन्होंने अपना सर्व व्यापार बडे पुत्र को सौंप दिया।

निवृत कामदेव अब ज्यादा से ज्यादा धर्म करने लगे। अपनी पौषधशाला में निवास कर, आभूषण, पुष्पमाला, विलेपन, शस्त्र आदि समस्त उपधियों का त्याग कर, पौषध व्रत का पालन करते हुए अपने जीवन का समय व्यतीत करने लगे।

एक रात, पौषधशाला में उन्होंने श्रावक की प्रतिमा धारण की थी, तब एक मायावी मिथ्यात्वी देव पिशाच रूप में वहां प्रगट हुआ। वह भयंकर पिशाच, हाथ में तलवार, विकराल रूप और गर्जना करते हुए बोला: "हे कामदेव! तू अभागा है!

अब तेरा अंत समीप है। तू बड़ा धर्मात्मा बन रहा है? तुझे मोक्ष में जाना है न ? तूने मेरे जैसे शक्तिशाली देव की उपेक्षा की है? तुझे नहीं पता, तेरी धर्म-साधना व्यर्थ है। तू अपने पाखंड को छोड़ दे, तू अपनी जीद नहीं छोड़ेगा तो मैं तलवार से तेरे टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा! असहय वेदना को सहते-सहते तेरी अकाल मृत्यु होंगी।''

पिशाच का विकराल रूप, भयानक गर्जना और कर्कश वचन को सुनकर कामदेव डरे नहीं, एवं जरा भी विचलित नहीं हुए, किंतु शांतिपूर्वक धर्मध्यान में लीन रहे। देव ने दो-तीन बार अपनी कर्कश आवाज में धमकी दी, लेकीन कामदेवने उनकी उपेक्षा की। देव ने जब देखा कि उसकी धमकी बेकार गई है, तो गुस्से में आकर तलवार से कामदेव के शरीर के टुकड़े कर दिए।

फिर देव ने हाथी रूप बनाया। अपनी सूंढ से कामदेव को उठाकर आकाश में फेंका- नीचे गिरते हुए कामदेव को अपने दंतशूल में चुभोकर जमीन पर गिरा कर अपने पैरों से तीन बार रगड़ा। कामदेव स्थिर रहें। वह हाथी बोला: "अब तू आर्तध्यान और असहनीय पीड़ा से अकाल में जीवन रहित हो जाएगा, मर जाएगा।'' परंतु कामदेव धर्म में अडिग रहे, उनके भावों में कोई बदलाव नहीं आया।

सर्प रूप से अंतिम प्रयास और कामदेव की विजय

अब देव का धैर्य खतम होनेमें था। इसलिए पौषधशाला से बहार निकल कर सर्प रूप में वापस आया। वह सर्प तीव्र विषैला, काले रंग का, क्रूर स्वरूप था। आँखें लाल, विष और क्रोध से भरी हुई थी। कामदेव के शरीर पर चढ कर पीछे से उसने गले में पूँछ लपेटी और तीक्ष्ण दंत से छाती पर डंस मार दिया। श्रावक को असह्य वेदना हुई - लेकिन जैन धर्म के उपासक श्रावक धर्म पर अडिग और अविचलित रहें।

महावीर उपासक श्रावक की द्रढता के सामने आखिर देव थक-हारकर अपना वास्तविक स्वरूप प्रगट करता है। आकाश में अपना प्रकाश फैलाते हुए, जमीन से ऊपर रहकर कामदेव को उसने कहा: "हे कामदेव! आप धन्य हो, कृतार्थ हो, आपका मानवभव सफल हुआ, आपको निर्ग्रंथ प्रवचन फला है ! आपकी धर्मनिष्ठा की प्रशंसा देवलोक में शक्रेन्द्रने करते हुए कहा कि - 'इस समय भरतक्षेत्र के चंपानगरी में कामदेव श्रावक पौषधशाला में पडिमा धारण कर धर्म चिंतन कर रहे हैं, उनकी धर्मदृढ़ता बहोत ही मजबूत है। कोई देव या दानव उन्हें विचलित नहीं कर सकता।' इस लिए मैं आपकी परीक्षा ले रहा था। मैं क्षमा चाहता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि भविष्य में किसी भी धर्मसाधक के साथ ऐसा क्रूर व्यवहार नहीं

करूंगा।"

महावीर स्वामी द्वारा सम्मान-

कामदेव ने उपसर्ग समाप्त हुआ, जानकर ध्यान पूर्ण कर लिया। उस समय श्रमण भगवान महावीर चंपानगरी के बाहर पूर्णभद्र उपवन में पधारें। कामदेव को यह समाचार मिलते ही उसने सोचा कि भगवान को वंदन नमस्कार करके वापस आने पर पारणा करूंगा। वे भगवान विराजमान थे, वहाँ आए। उन्हें वंदन नमस्कार किए। भगवानने उपदेश देते हुए कहा, "हे कामदेव! क्या गत रात्रि को एक देव आपको पिशाच, हाथी और सर्प का रूप धारण कर उपसर्ग दे रहा था?" कामदेव ने कहा- "हाँ, प्रभु! आप सत्य कह रहे हो।"

भगवान ने अपने साधु-साध्वीजी को संबोधन करते हुए कहा: "हे आर्यो! इस कामदेव श्रावक ने गृहस्थावास में रहते हुए मायावी देव के परिषह, उपसर्गों को सहन कर धर्मश्रद्धा की दृढ़ता का अनुपम परिचय दिया है। आप तो साधु हो, निर्ग्रंथ प्रवचन के जानकार हो, संसार के त्यागी हो, आप सबको भी देव, मनुष्य और तिर्यंच से आने वाले उपसर्गों को पूर्ण सहिष्णुता से सहन करते हुए अपने चारित्र में कामदेव की समान दृढ़, अडिग रहना चाहिए।"

इस तरह भगवान ने सभा में कामदेव श्रावक की प्रशंसा की।

कामदेव का अंतिम धर्ममार्ग-

बाद में कामदेव ने घर लौटकर श्रावक की अन्य पडिमायें धारण कीं। उन्होंने एक माह का संलेखन संथारा ग्रहण किया। 20 वर्षों तक श्रावक धर्म का पालन किया। फिर काल करके सुधर्म देवलोक में चार पल्य की स्थिति वाले देव हुए। भविष्य में महाविदह क्षेत्र में मनुष्य बनकर अधूरी साधना पूर्ण कर मोक्ष प्राप्त करेंगे। धन्य हैं कामदेव श्रावक की श्रद्धा को और दृढ़ता को...!

अपेक्षित प्रश्न:

1. कामदेव श्रावक की समृद्धि का वर्णन कीजिए।
2. भगवान से कामदेव ने श्रावकधर्म किस प्रकार अंगीकार किया - विस्तार से लिखिए।
3. कामदेव श्रावक को किसका उपसर्ग आया? उसने किन-किन रूपों में आकर कैसे-कैसे कामदेव को विचलित करने का प्रयास किया?
4. उपसर्ग की परीक्षा में कौन विजयी हुआ?

5. परीक्षा करने के बाद देव ने कामदेव की क्या प्रशंसा की?
6. भगवान महावीर ने कामदेव श्रावक की कौन से शब्द प्रयोग कर प्रशंसा की ?
7. कामदेव श्रावक मृत्यु के पश्चात कहाँ गए? वे मोक्ष कब और कहाँ से प्राप्त करेंगे?

3. दो कछुए
(श्री ज्ञाताधर्म कथा सूत्र)

ज्ञान जीवन को पारस बनाता है। जिसका दूसरा नाम बनारस है ऐसी थी वैभवशाली वाराणसी नगरी। कई तरह से आकर्षक उस नगर की सीमा के बाहर बहती थी गंगा महा नदी, और उसके ईशान कोन में स्थित था एक जलाशय (द्रह)। यह जलाशय सदैव शीतल जल से परिपूर्ण, विविध प्रकार के कमलों से शोभायमान था। उसमें मछली, मगर, ग्राह और कछुए आदि जलचर प्राणी जीवन सुखपूर्ण पसार कर रहे थे। जल ही उनका जीवन था। इस तरह यह द्रह रमणीय, दर्शनीय, अत्यंत सुंदर, आनंदप्रद और सभी का आकर्षण केंद्र बन चुका था।

पापी लोमडी और दो कछुए

उस जलाशय के पास ही एक मालुका कच्छ था। वहाँ दो पापी लोमडियाँ रहती थी। वे क्रोधी, कपटी, पापाचारी और मांसाहारी थी। रात्रि में मांस हेतु निकलती थी, दिन में छिपकर रहती थी।

एक समय सूर्यास्त होते संध्या हुई। लोगों का आवन-जावन कम हुआ तब, दो कछुए भोजन की तलाश में जलाशय से बाहर निकले और इधर-उधर घूमने लगे।

वहीं दूसरी ओर, वे दो लोमडी भी अपने मालुका कच्छ से बाहर निकली और उस जलाशय के आसपास घूमने लगी। एक तो पापों के उदय से तिर्यंच भव मिला और उसमें भी ऐसी मांसाहार वृत्ति...!

इस दोनों पापी लोमडी ने दो कछुओं को देखा, और जहाँ दो कछुए थे, वहाँ निकट आ गई। कछुए भी अपनी दृष्टि से इस पापी लोमडी को देखकर डर गए। तुरंत ही अपने अंगों को अपनी ढाल के भीतर छिपा लिया और स्थिर हो गए।

पहले कछुए की भूल और मृत्यु

लोमडियाँ तुरंत ही कछुएँ थे वहाँ आकर कछुएँ को हिलाने लगी। नाखून और दाँतों से शरीर को काटने की कोशिश की, किंतु कछुएँ की ढाल को थोडी भी तोड नहीं पाई।

कछुएँ के लिए ढाल उसके शरीर की रक्षा करने वाला कवच है। जब तक ढाल में रहते है, तब तक सब सुरक्षित। दोनों लोमडी ने दो-तीन बार प्रयास किए। बहुत मेहनत, कडा परिश्रम करने के बावजूद उनका सुरक्षा कवच तोडने में असफल रहें तब अंत में थक कर वहाँ से एकांत में जाकर स्थिर हो कर खडे रह गई।

अब दोंनो कछुएँ में से एक कछुए ने सोचा- "दोनों लोमडी चली गई हैं।" ऐसा समझ कर एक पैर ढाल के बाहर निकाला। ये दोनों लोमडी ने देख लिया कि तुरंत ही त्वरित गति से जहाँ कछुआ था, वहाँ गई और कछुए का पैर, नाखून और दाँत से तोडकर, चबा कर, मांस एवं रक्त पिया। फिर देखा तो कछुआ फिर से ढाल के अंदर चला गया था। फिर से दोनों लोमडी दूर चली गई।

कुछ समय बाद उस कछुए ने सोचा कि लोमडियाँ चली गई है। इसलिए दूसरा पैर बाहर निकाला और तुरंत ही लोमडियाँ आ गई और दूसरा पैर भी चबा डाला। इस तरह क्रमशः पीछे के दोनों पैर और अंत में सिर भी बाहर निकाला और पूरा कछुआ धीरे-धीरे चबा लिया गया। वह जीवनरहित हो गया।

दूसरे कछुए की बुद्धिमत्ता और रक्षा-

पापी लोमडियाँ जहाँ दूसरा कछुआ था, वहाँ पहुँच गई और उस कछुए को हर दिशा से उलट-पलट कर तोड़ने के लिए दाँतो का, नाखून का प्रयास किया, परंतु वे चमड़ी भेदने में असमर्थ रह गई। इस तरह दो-तीन बार प्रयास किए, अंत में थक-हार कर वे जहाँ से आई थी, वहाँ वापस लौट गई।

काफी समय बाद, दूसरे कछुए ने सबसे पहले अपना सिर बाहर निकाल कर, चारों दिशा में देख लिया, फिर चारों पैर एक साथ ढाल से बाहर निकाले और तुरंत जलाशय में पहुँच गया और अपने सब साथियों के साथ मिल कर, सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

सारांश और बोध-

"पहले खोलो आँख, फिर फैलाओ पंख..." जो साधक साधना करने हेतु मिली अपनी पाँचों इन्द्रियों पर संयम नहीं रख पाता, जैसे मन मर्जी हो, वैसे वर्ताव करता है या इन्द्रियाँ जो चाहती है, वह देता रहता है जैसे कि आँखें विकारपूर्ण दृश्य देखें, कान मधुर गीतों में रत हो जाएँ, जीव्हा से अनियंत्रित बोलें,इस तरह असंयमित रहे तो निंदनीय हो कर कर्मबंधन से युक्त हो कर संसार का परिभ्रमण

बढा देता है। जो साधक अपनी इन्द्रियों को संयम की ढाल में रखता है, मन को बाहर नहीं भटकने देता अर्थात् पापकर्म में इन्द्रियाँ और मन लिप्त न होने देने से आत्मसंयम की ढाल में उसे सुरक्षित रखता है। जरूरत हो वहाँ समिति में रहे अर्थात् जागृति और उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करे, बाकी समय गुप्ति अर्थात् प्रवृत्ति से निवृत्ति में रहे, यही साधक की साधना है।

जो साधक अष्ट प्रवचन माता की शरण में अपना जीवन समर्पित करता है, वही मोक्षपद का अधिकारी बनता है। गुप्ति से ही समाधि और सद्गति मिलती है।

अपेक्षित प्रश्न :-

1. किस नगरी में द्रह था? वहाँ कौन रहता था और वे कैसे थे?
2. लोमडीओं ने कछुए का आहार किस प्रकार किया?
3. किस कछुए का जीवन समाप्त हुआ? क्यों?
4. कौन-सा कछुआ बच गया और कैसे?
5. इस कथा का सारांश लिखिए।
6. साधक किसे कहते हैं?
7. समिति और गुप्ति में कब रहना चाहिए?
8. साधक की साधना क्या है?

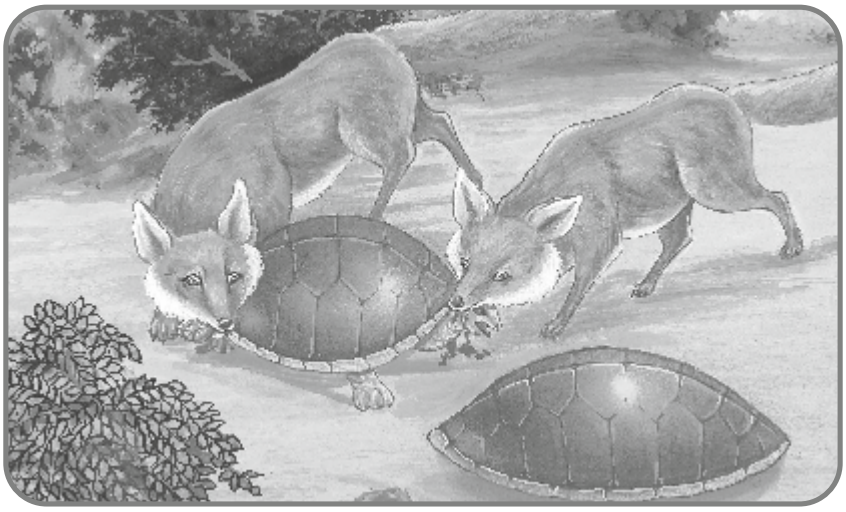

1. साधु वंदणा (1 थी 77 कडी)

नमूं अनंत चौबीसी, ऋषभादिक महावीर।
इण आर्य क्षेत्र मां, घाली धर्म नी सीर ।।1।।

महाअतुल-बली नर, शूर-वीर ने धीर।
तीरथ प्रवर्तावी, पहुंचा भव-जल-तीर ।।2।।

सीमंधर प्रमुख, जघन्य तीर्थंकर बीस।
छे अढ़ी द्वीप मां, जयवंता जगदीश ।।3।।

एक सौ ने सत्तर, उत्कृष्ट पदे जगीश।
धन्य मोटा प्रभुजी, तेह ने नमाऊँ शीश ।।4।।

केवली दोय कोड़ी, उत्कृष्टा नव कोड़।
मुनि दोय सहस्त्र कोड़ी, उत्कृष्टा नव सहस्त्र कोड़ ।।5।।

विचरे छे विदेहे, मोटा तपसी घोर।
भावे करि वंदूं, टाले भव नी खोड़ ।।6।।

चौबीसे जिन ना, सगला ही गणधार।
चौदह सौ बावन, ते प्रणमूँ सुखकार ।।7।।

जिनशासन-नायक, धन्य श्री वीर जिनंद।
गौतमादिक गणधर, वर्तायो आनंद ।।8।।

श्री ऋषभदेव ना, भरतादिक सौ पूत।
वैराग्य मन आणी, संयम लियो अद्भूत ।।9।।

केवल उपजाव्यूं, करी करणी करतूत ।
जिनमत दीपावी, सगला मोक्ष पहुंत ।।10।।

श्री भरतेश्वर ना, हुआ पटोधर आठ ।
आदित्यजशादिक, पहुंच्या शिवपुर-वाट ।।11।।

श्री जिन-अंतर ना, हुआ पाट असंख ।
मुनि मुक्ति पहुंच्या, टालि कर्म ना वंक ।।12।।

धन्य कपिल मुनिवर, नमी नमूं अणगार ।
जेणे तत्क्षण त्याग्यो, सहस्त्र-रमणी-परिवार ।।13।।

मुनिबल हरिकेशी, चित्त मुनीश्वर सार ।
शुद्ध संयम पाली, पाम्या भव नो पार ।।14।।

वलि इक्षुकार राजा, घर कमलावती नार ।
भगू ने जशा, तेहना दोय कुमार ।।15।।

छये छती ऋद्धि छांडी, लीधो संयम-भार ।
इण अल्पकाल मां, पाम्या मोक्ष-द्वार ।।16।।

वलि संयति राजा, हिरण-आहिडे जाय ।
मुनिवर गर्दभाली, आण्यो मारग ठाय ।।17।।

चारित्र लेई ने, भेट्या गुरु ना पाय।
क्षत्रीराज ऋषीश्वर, चर्चा करी चित लाय ।।18||

वलि दशे चक्रवर्ती, राज्य-रमणी ऋद्धि छोड़ ।
दशे मुक्ति पहुंच्या, कुल ने शोभा चहोड ।।19।।

इस अवसर्पिणी काल मां, आठ राम गया मोक्ष ।
बलभद्र मुनीश्वर, गया पांचमे देवलोक ।।20।।

दशार्णभद्र राजा, वीर वांद्या धरि मान ।
पछी इंद्र हटायो, दियो छःकाय अभयदान ।।21।।

करकंडू प्रमुख, चारे प्रत्येक बुद्ध ।
मुनि मुक्ति पहुंच्या, जीत्या कर्म महाजुद्ध ।।22।।

धन्य मोटा मुनिवर, मृगापुत्र जगीश ।
मुनिवर अनाथी, जीत्या राग ने रीश ।।23।।

वलि समुद्रपाल मुनि, राजेमती रहनेम ।
केशी ने गौतम, पाम्या शिवपुर-क्षेम ।।24।।

धन विजयघोष मुनि, जयघोष वलि जाण ।
श्री गर्गाचार्य, पहुंच्या निर्वाण ।।25।।

श्री उत्तराध्ययन मां, जिनवर कर्या बखाण ।
शुद्ध मन से ध्यावो, मन में धीरज आण ।।26।।

वलि खंदक संन्यासी, राख्यो गौतम-स्नेह ।
महावीर समीपे, पंच महाव्रत लेह ।।27।।

तप कठिन करीने, झौंसी आपणी देह ।
गया अच्युत देवलोके, चवि लेसे भव-छेह ।।28।।

वलि ऋषभदत्त मुनि, सेठ सुदर्शन सार ।
शिवराज ऋषीश्वर, धन्य गांगेय अणगार ।।29||

शुद्ध संयम पाली, पाम्या केवल सार।
ये चारे मुनिवर, पहुंच्या मोक्ष मंझार ।।30।।

भगवंत नी माता, धन-धन सती देवानंदा।
वलि सती जयंती, छोड़ दिया घर-फंदा ।।31||

सति मुक्ति पहुंच्या, वलि ते वीर नी नंद।
महासती सुदर्शना, घणी सतियों ना वृंद ।।32।।

वलि कार्तिक सेठे, पडिमा वही शूर-वीर।
जीम्यो मोरां ऊपर, तापस बलती खीर ।।33।।

पछी चारित्र लीधो, मित्र एक सहस्त्र आठ धीर।
मरी हुओ शक्रेन्द्र, चवि लेसे भव-तीर ।।34।।

वलि राय उदायन, दियो भाणेज ने राज।
पछी चारित्र लेईने, सार्या आतम-काज ।।35।।

गंगदत्त मुनि आनंद, तारण-तरण जहाज।
मुनि कौशल रोहो, दियो घणां ने साज ।।36।।

धन्य सुनक्षत्र मुनिवर, सर्वानुभूति अणगार।
आराधक हुई ने, गया देवलोक मोझार ।।37।।

चवि मुक्ति जासे, वलि सिंह मुनीश्वर सार।
बीजा पण मुनिवर, भगवती मां अधिकार ।।38।।

श्रेणिक नो बेटो, मोटो मुनिवर मेघ।
तजी आठ अंतेउरी, आण्यो मन संवेग ।।39।।

वीर पे व्रत लेई ने, बांधी तप नी तेग।
गया विजय विमाने, चवि लेसे शिव-वेग ।।40।।

धन्य थावच्चा पुत्र, तजी बतीसो नार।
तेनी साथे निकल्या, पुरुष एक हजार ।।41।।

शुकदेव संन्यासी, एक सहस्त्र शिष्य सार।
पंचरायसु शेलक, लीधो संयम-भार ।।42।।

सब सहस्त्र अढ़ाई, घणा जीवों ने तार।
पुंडरिकगिरि ऊपर, कियो पादोपगमन संथार ।।43।।

आराधक हुई ने, कीधो खेवो पार।
हुआ मोटा मुनिवर, नाम लियां निस्तार ।।44।।

धन्य जिनपाल मुनिवर, दोय धन्ना हुआ साध।
गया प्रथम देवलोके, मोक्ष जासे आराध ।।45।।

श्री मल्लीनाथ ना छह मित्र, महाबल प्रमुख मुनिराय।
सर्वे मुक्ति सिधाव्या, मोटी पदवी पाय ।।46।।

वलि जितशत्रु राजा, सुबुद्धि नामे प्रधान।
पोते चारित्र लई ने, पाम्या मोक्ष-निधान ।।47।।

धन्य तेतली मुनिवर, दियो छ काय अभयदान।
पोटिला प्रतिबोध्या, पाम्या केवलज्ञान ।।48।।

धन्य पांचे पांडव, तजी द्रौपदी नार।
स्थवीर नी पासे, लीधो संयम-भार ।।49।।

श्री नेमि वंदन नो, एहवो अभिग्रह कीध ।
मास-मासखमण तप, शत्रुंजय जई सिद्ध ।।50।।

धर्मघोष तणा शिष्य, धर्मरुचि अणगार ।
कीडियों नी करुणा, आणी दया अपार ।।51।।

कड़वा तूंबा नो, कीधो सगलो आहार ।
सर्वार्थसिद्ध पहुंच्या, चवि लेसे भव-पार ।।52।।

वलि पुंडरिक राजा, कुंडरिक डिगियो जाण ।
पोते चारित्र लेई ने, न घाली धर्म मां हाण ।।53।।

सर्वार्थसिद्ध पहुंच्या, चवि लेसे निर्वाण ।
श्री ज्ञातासूत्र मां, जिनवर कर्या बखाण ।।54।।

गौतमादिक कुंवर, सगा अठारे भ्रात ।
सब अंधकविष्णु-सुत, धारिणी ज्यांरी मात ।।55||

तजी आठ अंतेउर, काढ़ी दीक्षा नी बात ।
चारित्र लेई ने, कीधो मुक्ति नो साथ ।।56।।

श्री अनीकसेनादिक, छहे सहोदर भाय ।
वसुदेव ना नंदन, देवकी ज्यांरी माय ।।57।।

भद्दिलपुर नगरी, नाग गाहावई जाण ।
सुलसा-घर वधिया, सांभली नेम नी वाण ।।58।।

तजी बत्तीस-बत्तीस अंतेउर, निकलिया छिटकाय ।
नल कूबेर समाना, भेट्या श्री नेमि ना पाय ।।59।।

करी छठ-छठ पारणा, मन में वैराग्य लाय।
एक मास संथारे, मुक्ति विराज्या जाय ।।60।।

वलि दारुक सारण, सुमुख-दुमुख मुनिराय।
वलि कुंवर अनाधृष्ट, गया मुक्ति-गढ़ मांय ।।61।।

वसुदेव ना नंदन, धन-धन गजसुकुमाल।
रूपे अति सुंदर, कलावन्त वय बाल ।।62।।

श्री नेमी समीपे, छोड्यो मोह-जंजाल।
भिक्षु नी पडिमा, गया मसाण महाकाल ।।63।।

देखी सोमिल कोप्यो, मस्तक बांधी पाल।
खेरा नां खीरा, शिर ठविया असराल ।।64।।

मुनि नजर न खंडी, मेटी मन नी झाल।
परीषह सही ने, मुक्ति गया तत्काल ।।65।।

धन जाली मयाली, उवयाली आदि साध।
शांब ने प्रद्युम्न, अनिरुध साधु अगाध ।।66।।

वलि सतनेमि, दृढ़नेमि, करणी कीधी निर्बाध।
दशे मुक्ति पहुंच्या, जिनवर-वचन आराध ।।67।।

धन अर्जुनमाली, कियो कदाग्रह दूर।
वीर पै व्रत लई ने, सत्यवादी हुआ शूर ।।68।।

करी छठ-छठ पारणा, क्षमा करी भरपूर।
छह मासां मांही, कर्म किया चकचूर ।।69।।

कुँवर अइमुत्ते, दीठा गौतम स्वाम ।
सुणि वीर नी वाणी, कीधो उत्तम काम ।।70।।

चारित्र लेई ने, पहुंच्या शिवपुर-ठाम ।
धुर आदि मकाई, अन्त अलक्ष मुनि नाम ।।71।।

वलि कृष्णराय नी, अग्रमहिषी आठ ।
पुत्र-बहु दोय, संच्या पुण्य ना ठाठ ।।72।।

जादव-कुल सतियां, टाल्यो दुःख उचाट ।
पहुंची शिवपुर मां, ए छे सूत्र नो पाठ ।।73।।

श्रेणिक नी राणी, काली आदिक दश जाण ।
दशे पुत्र-वियोगे, सांभली वीर नी वाण ।।74।।

चंदनबाला पै, संयम लेई हुई जाण ।
तप कर देह झौंसी, पहुंची छै निर्वाण ।।75।।

नंदादिक तेरह, श्रेणिक नृप नी नार ।
सगली चंदनबाला पै, लीधो संयम-भार ।।76।।

एक मास संथारे, पहुंची मुक्ति मंझार ।
ए नेवुं जणा नो, अंतगड मां अधिकार ।।77।।

अभ्यासक्रम : श्रेणी 6

पृष्ठ

1. सूत्र विभाग - (गुण 30)

1. सामायिक-प्रतिक्रमण श्रेणी 1 से 5 तक पाठ, अर्थ, प्रश्नोत्तर का पुनरावर्तन 83
2. प्रतिक्रमण : आलोचना तथा 1 से 3 श्रमणसूत्र के अर्थ तथा प्रश्नोत्तर

2. तत्त्व विभाग / संस्कार विभाग - (गुण 50)

1. आगार धर्म का स्वरूप और दुर्लभता (गुण 07)
2. नव तत्त्व का थोकडा (गुण 35)
3. 32 आगम (सूत्र) का परिचय (गुण 08)

3. कथा विभाग - (गुण 10)

1. मुनि मेघकुमार
2. मृगापुत्र दारक
3. दशार्णभद्र राजा

4. काव्य विभाग - (गुण 10)

1. भक्तामर 1 से 8 कडी
2. साधु वंदना संपूर्ण

प्रतिक्रमण - पाठ 23 : आलोचना तथा प्रथम श्रमणसूत्र

प्र-1 : 18, 24, 120 प्रकार से पाप-दोष लगते हैं, वह कौन कौन से ?

उ- 1 : ये पाप दोष मुख्यतः हिंसा आदि दोषों के कारण लगते हैं। इसके गणना-क्रम निम्न प्रकार से हैं:

हींसा आदि दोष	कितने प्रकार	सब मिल हुए
1. सांसारिक जीवों के भेद	563	563
2. उन जीवों की हिंसा अभिहया से जीवियाओ ववरोविया आदि 10 प्रकार से होती है	563 × 10	5,630
3. यह हिंसा राग या द्वेष से होती है	5,630 × 2	11,260
4. मन, वचन, काया - तीन योगों से होती है	11,260 × 3	33,780
5. करना, करवाना, अनुमोदन करना 3 करण से	33,780 × 3	1,01,340
6. भूत, भविष्य, वर्तमान - इन 3 कालों में होती है	1,01,340 × 3	3,04,020
7. अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु तथा अपने आत्मा की साक्षी से मिच्छामि दुक्कडं	3,04,020 × 6	18,24,120

प्र-2 : आलोचना में प्रयुक्त 'खलाए', आदि शब्दों का अर्थ लिखिए।

उ-2 : खलाए: भूलवश (स्खलन द्वारा) **धीठाए:** तिरस्कारवश, **आपथापना:** मनमानी से **परउथापना:** दूसरों को अपमानित या दुःखी करने से, **ममते:** ममत्व से, अपनेपन के भाव से।

प्र-3 : श्रमणसूत्र क्या होते है?

उ- 3 : चतुर्विध संघ रूप साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, के लिए जो विशिष्ट प्रायश्चित्त सूत्र हैं - उन्हें श्रमणसूत्र कहते हैं।

प्र-4 : श्रमणसूत्र किन-किन को करना चाहिए?

उ- 4 : चतुर्विध संघ - साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका - सभी को करना चाहिए। (1) श्री भगवती सूत्र के 20वें शतक के 8वें उद्देश में '**चउव्विहे समणसंघे पन्नत्ते**' कह के साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इस चतुर्विध संघ को एक 'श्रमणसंघ' कहा गया है। (2) अतः सिर्फ साधु के लिए नहीं किंतु श्रावक के लिए भी आगम में '**श्रमण**' शब्द का प्रयोग किया गया है। (3) श्रावक देश श्रमण और साधु पूर्ण श्रमण

होते हैं। (4) श्रावक जीवन में एकबार लेने वाली संलेखना जब हम प्रतिदिन बोल सकते है, तो प्रतिदिन श्रमणसूत्र बोलने में भी कोई दिक्कत नहीं। (5) दसवा व्रत, पौषधव्रत, दयाव्रत आदि करनेवाले श्रावक निद्रा दोष, गौचरी दोष, प्रतिलेखना या स्वाध्याय दोष आदि से मुक्त होने हेतु प्रथम तीन श्रमण सूत्रों का प्रयोग कर सकते हैं। (6) चौथा श्रमणसूत्र **श्रद्धा, प्ररूपणा और स्पर्शना** संबंधी है। (7) पाँचवा श्रमणसूत्र निर्ग्रंथ प्रवचन के महत्व और श्रद्धा की विशुद्धि करने संबंधी है, जो चतुर्विध संघ के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसलिए पाँचो श्रमणसूत्र चतुर्विध संघ को अवश्य करना चाहिए।

प्र-5 : प्रथम श्रमणसूत्र किस विषय में है?

उ-5 : प्रथम श्रमणसूत्र - निद्रा दोष से निवृत्ति हेतु है। यह पौषधव्रत, रात्रिसंवर आदि के अंतर्गत निंदसे उठने के बाद कायोत्सर्ग द्वारा निद्रा दोष का प्रायश्चित्त करने हेतु बोला जाता है।

प्र-6 : प्रथम श्रमणसूत्र का उपयोग कब करना होता है?

उ-6 : (1) प्रातःऔर सायं के प्रतिक्रमण में इसका पाठ करना चाहिए। (2) निद्रात्याग के तुरंत बाद भावशुद्धि के लिए चार लोगस्स एवं प्रथम श्रमणसूत्र का कायोत्सर्ग करना चाहिए। फिर क्षेत्र-विशुद्धि हेतु इरियावहिया सूत्र का कायोत्सर्ग करना चाहिए।

प्र-7 : निद्रा में कौन-कौन से दोष लगते हैं?

उ-7 : निद्रा में मन, वचन एवं कायासे संयम मर्यादा के बाहर कोई भी कार्य होने की संभावना है। जैसे कि **मन से:** स्वप्न में मैथुन भाव, द्रष्टिसे या मनसे क्रीडा की हो। भोजन-पेय की इच्छा की हो। **वचन से:** नींद में अनियंत्रित वाणी **काया से:** बिना पूंजे हाथ-पैर फैलाना, सिकोड़ना, अयत्नासे खांसी, छींक, खाना, किसी जीवको शरीरके निचे दबा देना, शरीर खुजाना आदि दोष लगते हैं।

प्र-8 : व्रत के दौरान रात्रि में सोते समय क्या सावधानी रखनी चाहिए?

उ-8 : व्रत के दौरान रात्रि में सोते समय निम्न लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(1) नींद को प्रमाद समझ कर कम करना चाहिए। रात को अधिक से अधिक धर्मध्यान, धर्मजागरण करना चाहिए। (2) बिछाने एवं पहनने के वस्त्र, रात को सोने की जगह... आदि का दिन में प्रतिलेखन करना चाहिए। (3) शयन स्थल को पूंजकर बिछाना करना चाहिए। (4) शरीर को पुंजकर बिछाने में जाना चाहिए।

(5) सोने से पहले नमस्कार मंत्र, लोगस्स, आदि सूत्र का स्मरण या कायोत्सर्ग करना चाहिए। (6) सोते समय भी मुहपत्ति धारण करनी चाहिए। (7) बिना पूंजे करवट न बदलें, हाथ पांव को न फैलाएँ न सिंकुडे। (8) सुबह उठकर प्रथम श्रमणसूत्र का कायोत्सर्ग करें। (9) जो वस्त्र/ बिछाना रात में उपयोग में लाए हुए हों उनका दिन शुरु होने पर फिर से प्रतिलेखन करें।

अपेक्षित प्रश्न:

1. छींक, उबासी आदि के शब्द प्रतिक्रमण के किस पाठ में आते हैं?
2. स्वप्न में दोष लगने का संकेत किन शब्दों से मिलता है?
3. प्रथम श्रमणसूत्र का नाम क्या है?

पाठ 24 : दूसरा श्रमणसूत्र

प्र-1 : गोचरचर्या क्या है? भिक्षाचर्या क्या है?

उ-1 : गाय आदि पशुओं का चरना, थोड़ा-थोड़ा ऊपर-ऊपर से खाना- उसे गोचर कहते हैं। इसके लिए गाय इधर-उधर घूमती है, इसलिए इसे गोचरचर्या कहते हैं। गाय तो अदत्त को भी ग्रहण करती है और उसमें छकाय जीवों की हिंसा भी होती है। साधु तो गृहस्थों और छकाय जीवों को पीड़ा दिए बिना केवल दिया हुआ आहार-पानी ही ग्रहण करते हैं, इसलिए इसे भिक्षाचर्या कहा जाता है। अर्थात्, साधु-साध्वी की गोचरचर्या रूप भिक्षाचर्या होती है।

प्र-2 : दूसरा श्रमणसूत्र किस विषय में है?

उ-2 : गौचरी में लगने वाले दोषों से निवृत्ति के विषय में है।

प्र-3 : दूसरा श्रमणसूत्र कब बोलना होता है?

उ-3 : (1) चतुर्विध संघ द्वारा सुबह और शाम के प्रतिक्रमण में, (2) साधु-साध्वी द्वारा गौचरी करके लौटने के बाद गौचरी में लगे दोषों की शुद्धि हेतु इस पाठ को और ईरियावहिया पाठ को एवं (3) दशम व्रत धारक श्रावक-श्राविकाओं द्वारा गौचरी लाने के बाद कायोत्सर्ग में यह पाठ बोला जाता है।

प्र-4 : मंडि पाहुडियाए दोष क्या है?

उ-4 : तैयार भोजन का पहला थोड़ा भाग पुण्य हेतु किसी बर्तन में अलग निकालकर रखा जाता है, उसे अग्रपिंड कहते हैं। ऐसे अग्रपिंड को गौचरी में लेना मंडि पाहुडियाए दोष है। क्योंकि वह पुण्य हेतु निकाला गया होता है, इसलिए साधु को लेना निषिद्ध है।

प्र- 5 : बलि पाहुडियाए दोष क्या है?

उ- 5 : देवता आदि के लिए पूजन हेतु तैयार किया गया भोजन **'बलि'** कहलाता है। इसे लेना **या** साधु के गौचरी पर आने पर अग्नि व चारों दिशाओं में बलि फेंककर दिया गया भोजन लेना- बलि पाहुडियाए दोष है। इसमें आरंभ होता है, इसलिए निषेद्ध है।

प्र- 6 : ठवणा पाहुडियाए दोष क्या है?

उ- 6 : साधु के उद्देश्य से या अन्य भिक्षु हेतु अलग निकाला गया भोजन यदि ले लिया जाए, तो वह दोष ठवणा पाहुडियाए कहलाता है।

प्र- 7 : पश्चात् कर्म दोष और पुर: कर्म दोष क्या है?

उ- 7 : साधु-साध्वी को आहार देने के बाद उस हेतु सचित जल से हाथ या बर्तन धोने से लगने वाला दोष - **पश्चात् कर्म** दोष कहलाता है। आहार देने से पहले सचेत जल से हाथ या बर्तन धोने से जो दोष लगता है - वह पुर: कर्म दोष है।

प्र- 8 : इस पाठ में पृथ्वीकाय, अपकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय की विराधना दर्शाने वाले शब्द कौन-कौन से हैं?

उ- 8 :पृथ्वीकाय:रयसंसट्ठहडाए। **अपकाय:** दगसंसट्ठहडाए। **वनस्पतिकाय:** बीयभोयणाए और हरियभोयणाए। **त्रसकाय:** साणा वच्छा दारा संघट्टणाए और पाणभोयणाए।

प्र- 9 : गौचरी करते समय किस से कौन-कौन से दोष लग सकते हैं?

उ- 9 : उद्गम के 16 दोष - गौचरी देने वाले गृहस्थ से लगते हैं। उत्पादन के 16 दोष - गौचरी ग्रहण करने वाले साधु से लगते हैं। एषणा के 10 दोष - गृहस्थ व साधु दोनों से लगते हैं। कुल =42 दोष लग सकते है।

प्र-10 : कौन-से श्रावक गौचरी करने जा सकते हैं?

उ-10 : दसवा व्रत धारण करने वाले अथवा 11वीं श्रमणभूत पडिमा धारण करने वाले श्रावक गौचरी करने जा सकते हैं।

अपेक्षित प्रश्न:

(1) बिखरा-गिरा हुआ आहार लेने पर कौन-सा दोष लगता है?

(2) बिना कारण वस्तु माँगने पर कौन-सा दोष लगता है?

(3) गौचरी में किन को लांघकर नहीं जाना चाहिए?

(4) दूसरे श्रमणसूत्र का नाम क्या है?

पाठ 25 : तृतीय श्रमणसूत्र

प्र-1: तृतीय श्रमणसूत्र किस विषय संबंधित है?

उ- 1 : स्वाध्याय और प्रतिलेखन में लगे दोषों से निवृत्त होने के संबंधित है।

प्र-2 : काल प्रतिलेखन का क्या अर्थ है?

उ- 2 : प्रतिलेखन का अर्थ है- देखना। प्रतिक्रमण के बाद आगम की मूल गाथाओं का स्वाध्याय करने से पहले यह देखना कि आकाश आदि से संबंधित कोई असज्झाय तो नहीं है, अर्थात् यह समय स्वाध्याय के लिए उपयुक्त है या नहीं - इसी को **काल प्रतिलेखन** कहते हैं। इससे **श्री उत्तराध्ययन सूत्र** में बताए अनुसार ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा होती है।

प्र-3 : स्वाध्याय क्या है? उससे क्या लाभ होता है?

उ- 3 : (1) श्रेष्ठ पठन-पाठन रूप अध्ययन (2) स्व आत्मा के गुणों के स्वरूप का चिंतन (3) यह सोचना कि मेरा जीवन ऊँचा बन रहा है या नहीं। स्वाध्याय से हित, अहित, कर्तव्य, अकर्तव्य, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप को जाना जा सकता है।

प्र-4 : साधक को स्वाध्याय कितनी बार करना चाहिए?

उ- 4 : रात्रि के पहले और चौथे प्रहर तथा दिन के पहले और चौथे प्रहर- इस प्रकार चार प्रहर स्वाध्याय करना चाहिए। अन्य असज्जाय टालकर **कालिक सूत्रों** का स्वाध्याय इन चार प्रहरों में और **उत्कालिक सूत्रों** का स्वाध्याय तो आठों प्रहर चार संधीकालों को छोड़कर किया जा सकता है।

प्र-5 : स्वाध्याय के कितने प्रकार हैं? कौन-कौन से?

उ- 5 : स्वाध्याय के पाँच भेद हैं: (1) **वाचना:** शास्त्रो के सूत्र और अर्थ को ग्रहण करना। (2) **पृच्छणा:** संदेह होने पर प्रश्न करना। (3) **परियट्टणा:** सूत्र और अर्थ का पुनरावर्तन करे जिससे वे विस्मृत न हो जावे। (4) **अनुप्रेक्षा:** सूत्रों के तत्त्वों का, अर्थ का चिंतन करे। (5) **धर्मकथा:** सूत्रों का रहस्य जानकर बादमें उसका उपदेश दे, वह धर्मकथा।

प्र-6 : साधक को प्रतिलेखन कितनी बार करना होता है?

उ- 6 : दिन के प्रथम और चतुर्थ प्रहर, यानी दो बार करना होता है।

प्र-7 : प्रतिलेखन और प्रमार्जन किन वस्तुओं का किया जाता है?

उ- 7 : प्रतिलेखन - देखना और प्रमार्जन - पूंजना। साधक के पास जो मुँहपत्ती, गुच्छा, रजोहरण, वस्त्र आदि हों, उनका **प्रतिलेखन** करना होता है। पात्र, पाट, पाटला, बाजोट जैसी कठोर वस्तुओं का **प्रतिलेखन** और गुच्छे द्वारा **प्रमार्जन** करना होता है। वस्त्र दिन और रात्रि दोनों समय उपयोग में आते हैं, इसलिए दिन में दो बार उनका प्रतिलेखन करना होता है। प्रतिलेखन करते समय उत्कृष्ट वंदना के आसन में बैठना चाहिए।

प्र-8 : तृतीय श्रमणसूत्र का पाठ कब बोलना चाहिए?

उ- 8 : प्रतिक्रमण में प्रातः और संध्या के समय इस पाठ को बोलना चाहिए। साथ ही प्रतिलेखन के बाद इसका कायोत्सर्ग भी करना चाहिए।

प्र-9 : दुष्प्रतिलेखन और दुष्प्रमार्जन का क्या अर्थ है?

उ- 9 : आलस्यपूर्वक, जल्दबाज़ी से या विधिविहीन देखना-दुष्प्रतिलेखन कहलाता है। जल्दबाज़ी में, बिना विधि के, बिना उपयोग के पूंजना- दुष्प्रमार्जन कहलाता है।

प्र-10: यह पाठ बोलना आवश्यक क्यों है?

उ- 10: यदि स्वाध्याय या प्रतिलेखन नहीं किया गया हो, या तो निषेद्ध समय में किया गया हो, उस पर श्रद्धा नहीं रखी गई हो, इस संबंध में मिथ्या प्ररूपणा की गई हो, योग्य विधिपूर्वक नहीं किया गया हो, इत्यादि जो भी अतिचार दोष लगे हों, उनसे मुक्त होने के लिए यह पाठ बोलना आवश्यक है।

प्र-11: यदि स्वाध्याय और प्रतिलेखन में अतिक्रम आदि चार दोष लगे हों तो क्या उसका प्रतिक्रमण हो सकता है?

उ- 11: स्वाध्याय और प्रतिलेखन उत्तर गुण हैं। इन में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार- चारों दोष लगने से चारित्र में मलिनता आती है, परंतु पूर्ण चारित्र भंग नहीं होता, इसलिए उसका प्रतिक्रमण हो सकता है।

अपेक्षित प्रश्न:

(1) तृतीय श्रमणसूत्र का नाम क्या है?

(2) अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार का क्या अर्थ है?

2. तत्त्व विभाग / संस्कार विभाग

1. आगारधर्म का स्वरूप और उसकी दुर्लभता

अनंतकाल के परिभ्रमण में, हमने भूतकाल में पंचेन्द्रिय जीव के स्वरूपमें सबसे कम समय व्यतीत किया है। उसमें भी नरक और देवगति में अधिक समय व्यतीत किया है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय रूप में भी बहुत समय निकल गया। इस प्रकार पंचेन्द्रिय जीव होते हुए भी मनुष्य के भव बहुत ही कम मिले है। उसमें भी जैन कुल, आर्यक्षेत्र, पूज्य साधु-साध्वीजी का संग, जिनवाणी, सम्यक् दर्शन, श्रावकपना और साधुपना प्राप्त होना अत्यंत दुर्लभ है।

चारों गतियों के संसारी जीवों का औसत निकालें तो **अनंत मिथ्यात्वी जीवों में से केवल एक जीव समकिती होता है और असंख्य समकिती जीवों में से भी औसतन एक जीव श्रावक बनता है।** इसलिए श्रावक धर्म की दुर्लभता को समझकर आराधक **श्रावक बनने सम्यक् पराक्रम (पुरुषार्थ)** करने हेतु उसके स्वरूप को समझते है।

(1) वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा जाता है। ज्ञान और दर्शन आत्मा के गुण हैं। आत्मा का मूल स्वरूप समता रूप है, अतः समता रूप आत्मा का धर्म है। (2) जैन धर्म में साधक के लिए अरिहंत भगवान की आज्ञा का पालन करना ही धर्म है। अरिहंत भगवान जो करने को कहें - वह करना धर्म है। जो छोड़ने को कहें - वह छोड़ना धर्म है। (3) धर्म के दो मुख्य भेद हैं: श्रुत धर्म और चारित्र धर्म। (4) चारित्र धर्म के भी दो भेद हैं: आगार धर्म यानी श्रावक धर्म और अणगार धर्म यानी साधु धर्म। (5) श्रावक मन, वचन और काया से साधु-साध्वीजी की पर्युपासना करता है, इसलिए उसे श्रमणोपासक कहा जाता है। (6) 'श्रावक' शब्द का विश्लेषण: **श्र** = जिसमें श्रद्धा हो, **व** = जिसमें विवेक हो और **क** = जो क्रिया करके कर्म का क्षय करता हो। (7) श्रावक श्रद्धावान होता है इसलिए सम्यक् दर्शन की आराधना करता है। श्रावक विवेकी होता है इसलिए सम्यक् ज्ञान की आराधना करता है। श्रावक क्रियावान होता है इसलिए सम्यक् चारित्र की आराधना करता है। (8) ज्ञान से पदार्थ को जानना, दर्शन से उस पर श्रद्धा करना, चारित्र से आचरण करना और तप से पूर्वमें बंधे कर्मों का नाश करना। (9) इसीलिए श्रावक अपनी यथाशक्ति व्रत-नियम को धारण करता है। श्रावक धर्म सोना खरीदने जैसा है, साधु धर्म हीरा

खरीदने जैसा है। इस प्रकार दोनों ही धर्म यथार्थ मोक्षमार्ग हैं।

आओ, प्रश्नोत्तर द्वारा श्रावक धर्म की अन्य जानकारी प्राप्त करें:

प्र. श्रावक कौन बन सकता है? उ. मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय।

प्र. श्रावक धर्म के अन्य नाम? उ.देशविरती चारित्र धर्म अथवा संयमा संयम।

प्र. चतुर्विध संघ में श्रावक का स्थान? उ. तीसरा।

प्र. श्राविका का स्थान? उ. चौथा।

प्र. किस प्रकार के मनुष्य श्रावक? उ. 15 कर्मभूमि (ढाई द्वीप) के गर्भज मनुष्य।

प्र. किस प्रकार के तिर्यंच श्रावक? उ. ढाईद्वीप अंदर के और ढाईद्वीप बाहर के तिर्यंच पंचेन्द्रिय श्रावक।

प्र. ढाईद्वीप में श्रावक किस काल में? उ. अवसर्पिणी काल के 3, 4, 5 आरे में। उत्सर्पिणी काल के 3, 4 आरे में।

प्र. महाविदेह क्षेत्र में किस काल में? उ. सदा होते है, शाश्वत।

प्र. मनुष्य श्रावक कितने? उ. संख्याता

प्र. तिर्यंच श्रावक कितने? उ. असंख्याता

प्र. श्रावक के व्रत कितने? उ. 12

प्र. श्रावक के मनोरथ कितने? उ. 3

प्र. श्रावक का गुणस्थान कौन सा? उ. पाँचवा।

प्र. श्रावक के अभिगम कितने? उ. 5

प्र. श्रावक के गुण कितने? उ. 21

प्र. श्रावक को इंद्रियाँ कितनी? उ. 5

प्र. श्रावक का आयुष्य कितना? उ. मनुष्य जघन्य 9 वर्ष, तिर्यंच श्रावक का जघन्य अंतर्मुहूर्त। दोनों का उत्कृष्ट पूर्व क्रोड वर्ष का।

प्र. एक करोड़ पूर्व वर्ष यानि कितने? उ. 84 लाख वर्ष × 84 लाख वर्ष यानि 70,560 अब्ज वर्ष × 1 करोड वर्ष।

प्र. श्रावक की अवगाहना कितनी? उ. मनुष्य जघन्य दो हाथ, उत्कृष्ट 500 धनुष. तिर्यंच जघन्य अंगुल का असंख्यातवा

भाग, उत्कृष्ट हजार योजन।

प्र. श्रावक में जीव के भेद कितने? उ. 15 कर्मभूमि मनुष्य + 5 संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय -कुल 20 के पर्याप्त।

प्र. श्रावक मरकर कहाँ जाते हैं? उ. देवलोक में (जघन्य 1ला, उत्कृष्ट 12वा देवलोक)।

प्र. श्रावकधर्म परलोक में आता है? उ. नहीं, साथ में नहीं आता।

प्र.श्रावकधर्म की आराधना कहाँ तक हो सकती है? उ. जावजीव (यावत् जीवन) तक और वह परभव में साथ आती है।

श्रावक धर्म का स्वरूप और उसकी गरिमा:

जब तीर्थ की स्थापना होती है, तब पहले ही दिन गणधर द्वादशांग (12 अंग सूत्रों) की रचना करते हैं। वह रचना शाश्वत (सनातन) होती है। तीर्थ स्थापना के पहले ही दिन 12 अंग सूत्रों का ग्रंथ संयोजन हो जाता है। पहले ही दिन सातवे अंग सूत्र श्री उपासक दशांग सूत्र की रचना हो गई। आगमों में गणधर तीर्थंकरों द्वारा कहे गए श्रावकों के जीवन को गूंथते हैं। क्योंकि वर्तमान तीर्थंकरों के शासन में अभी श्रावक बनने हैं, इसलिए वे पूर्व तीर्थंकरों के शासन में हुए श्रावकों की जानकारी को ग्रंथित करते हैं। तीर्थंकरों के हृदय में "श्रावक...", गणधरों के हृदय में "श्रावक...", जैन शासन में "श्रावक..."।

श्रावको के लिए एक अलग विशेष आगमका संयोजन किया गया है - यही बात श्रावकत्व की महिमा को दर्शाती है।

श्रावक के 12 व्रतों को धारण करने की पुस्तीकामें से यथाशक्ति व्रत-नियम धारण (ग्रहण) करें।

श्रावक धर्म की सुवर्ण शिक्षा

दर्पण शरीर का दर्शन करवाता है और आगम रूपी दर्पण आत्मा का दर्शन करवाता है । आप आगम रूपी दर्पण में झाँकोगे, तो आत्मस्वरूप को देखेंगे, आत्मकल्याण का मार्ग पाओगे, आत्मा को परमात्मा बनाओगे। तो आओ, आगम के पन्नों पर झलकते श्रावक धर्म की आराधना करनेवाले श्रमणोपासकों के जीवन को देखें और उनसे प्रेरणा लेकर अपनी आराधना को वैसी बनाने का प्रयास करें।

श्री उपासक दशांग सूत्र

वाह! भगवान महावीर स्वामी ने स्वयं **कामदेव श्रावक** की दृढ़ता की प्रशंसा की! "हे आर्यों! जो गृहस्थ अवस्था में रहकर श्रावक धर्म का पालन करता है, वह श्रावक भी देव, मनुष्य और तिर्यंच के उपसर्गों को सहन करता है और धर्म में अडिग रहता है - तो द्वादशांग के ज्ञाता साधु-साध्वियों को तो और अधिक उपसर्ग सहने ही चाहिए।" दृढ़ धर्म पालन के लाभ क्या कुछ साधारण हैं?

भगवान ने स्वयं कहा- "निर्ग्रंथ प्रवचन में सत्य, तथ्य और वास्तविक भावों का प्रायश्चित नहीं होता। इसलिए गौतम! तुम प्रायश्चित लो।" यह कहकर भगवान ने **गौतम स्वामी** को आनंद श्रावक के पास क्षमा मांगने भेजा। आनंद श्रावक को जो अवधिज्ञान हुआ था, उसका भगवान ने समर्थन किया।

यदि साधु में क्षमा के मूल्य हैं, तो श्रावक में तो और भी अधिक होने चाहिए...!

श्री भगवती सूत्र

श्रावक के मुख से प्रभु का नाम आना सामान्य है, लेकिन प्रभु के मुख से श्रावक का नाम आना असामान्य है। भगवान अपने मुख से गौतम गणधर आदि से कहते हैं: "हे गौतम! उस कालमें उस समय **'तुंगिया' नामक नगरी** थी। वहाँ बहुत से **श्रावक** रहते थे, जो नौ तत्त्व के ज्ञाता, पुण्य-पाप के स्वरूप के जानकार और देवों की सहायता की इच्छा न करनेवाले थे। धर्म उनके हाड़-मज्जा में समाया हुआ था।" भगवान के हृदय और मुख में जो श्रावक बसे - वे तो संसारसागर को पार कर ही गये।

प्रभु का बोध: भगवान ने पोखली आदि श्रावकों को कहा - "तुम शंख श्रावक की निंदा मत करो। वह धर्म को लेकर प्रीति व दृढ़ता से युक्त है।"

शंख श्रावक, धन्य हो! तुम्हारा मनुष्य जीवन सफल हुआ...!

भगवान ने मंडूक श्रावक से कहा "हे मंडूक! तुमने अन्य तीर्थिओं को सही उत्तर दिया, सटीक उत्तर दिया। अरिहंतो की और अरिहंत प्ररूपित धर्म की अशातना करते हुए, अन्य धर्मियों को तुमने निरुत्तर किया।" वाह! ज्ञान और बुद्धि से

अन्य तीर्थियों को हराने वाला वह दृढ़धर्मी श्रावक -एकावतारी बन ही जाता है...!

श्री सुख विपाक सूत्र

प्रभु ! आप ने स्वमुख से 'सुबाहु कुमार' को श्रावक के बारह व्रत अंगीकार करवाये! सुबाहु कुमार ने भगवान से पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत रूपी गृहस्थ धर्म स्वीकार किया। कहो, उन बारह व्रतों का मूल्य कितना होगा?

श्री वह्नि दशा सूत्र

भगवान अरिष्टनेमि ने बलभद्र राजा के पुत्र **निषिध कुमार आदि बारह राजकुमारों** को पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत अंगीकार करवाए।

श्री ऊत्तराध्ययन सूत्र

श्री उत्तराध्ययन सूत्र रूपी अंतिम देशना में भी प्रभु ने कहा: "श्रावक सामायिक आदि की आराधना करते-करते पक्खी की रात को पौषध व्रत करें।" देह को नहीं - आत्मा को पोषण देने की बात प्रभु ही करते हैं...!!

श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र

साधु के पाँच महाव्रत और श्रावक के पाँच अणुव्रत - दोनों में आनेवाले अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के गुणों की महीमा करने में प्रभुने क्या बाकी रखा ?

फिर बात केवल इतनी ही...

निष्कर्ष: सर्वज्ञ, सर्वदर्शी श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने श्रावक धर्म को चारित्र धर्म का एक भेद बताया है। प्रभु ने स्वमुख से अनेक भव्य आत्माओं को श्रावक के बारह व्रत अंगीकार कराये हैं। श्रावकों के सम्यकत्व के, सम्क्ज्ञान के, प्रिय धर्मता के, दृढ़ धर्मता के, उपसर्गों में अडिगता के, पड़िमा धारण करने के, अन्य तीर्थियों को निरुत्तर करने संबंधी निरतिचार आराधना के गुणगान किए हैं - जो आज भी भव्य आत्माओं को प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं।

2. अथ श्री नव तत्त्व

विवेकी सम्यक्दृष्टि जीवों को नव तत्त्वों को जैसे हैं, वैसे तथारूप बुद्धि के अनुसार गुरुगम्य ज्ञान से स्वीकारना चाहिए। तत्त्व का अर्थ है वस्तु का सच्चा स्वरूप और जिसका शाश्वत अस्तित्व होता है। नौ तत्त्वों के नाम इस प्रकार हैं।

(1) जीव तत्त्व (2) अजीव तत्त्व (3) पुण्य तत्त्व (4) पाप तत्त्व (5) आश्रव तत्त्व (6) संवर तत्त्व (7) निर्जरा तत्त्व (8) बंध तत्त्व (9) मोक्ष तत्त्व।

1. जीव तत्त्व

चैतन्य लक्षण, सदा सउपयोगी, असंख्यात प्रदेशी, सुख-दुख को जानने वाला, सुख-दुख का वेदक (अनुभवकर्ता), और अरूपी होता है - उसे जीव कहते हैं। **या फिर** व्यवहार नय से देखा जाए तो - जो शुभ-अशुभ कर्मों का कर्ता, हर्ता और भोक्ता है; और निश्चय नय से देखें तो - जो ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप निजगुणों का ही भोक्ता है, उसे जीव कहते हैं। जीव के स्वरूप को **जीव तत्त्व** कहा जाता है।

जीव के विविध प्रकारों के भेद

जीव के भेद	संसारी जीव अपेक्षा	संसारी और सिद्ध सर्व जीव अपेक्षा
1	चैतन्य[1] लक्षण जीव	चैतन्य लक्षण जीव
2	त्रस[2] और स्थावर[3]	संसारी और सिद्ध
3	स्त्रीवेद[4], पुरुषवेद, नपुंसकवेद	भव सिद्धियाँ[5], अभव सिद्धियाँ[6] नोभव सिद्धियाँ नोअभव सिद्धियाँ[7]

[1] जैसे गुड़ का गुण मिठास होता है, वैसे ही जीव का गुण है चैतन्य। जैसे गुड़ और मिठास अलग नहीं होते, वैसे ही जीव और **चैतन्य** अलग नहीं होते। चैतन्य ही ज्ञान गुण है।" [2] **त्रस -** वे जीव जो स्वयं चल-फिर सकते हैं। जो त्रास से बचने धूप से छाँव में और छाँव से धूप में चले जाए, वह त्रस। [3] **स्थावर** - वे जीव जो स्वयं हलन -चलन नहीं कर सकते। [4] **वेद -** विषय और विकार की उत्पत्ति को वेद कहते हैं। [5] **भव सिद्धियाँ -** वे भव्य जीव जो मोक्ष प्राप्ति के योग्य हैं। [6] **अभव सिद्धियाँ**- वे अभव्य जीव जो मोक्ष के अयोग्य हैं। [7] **नोभवसिद्धियाँ- नोअभवसिद्धियाँ** - सिद्ध भगवान।

4	नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव	चक्षुदर्शनी,अचक्षुदर्शनी अवधिदर्शनी , केवलदर्शनी
5	एकेंद्रिय, दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौरेंद्रिय, पंचेंद्रिय	सजोगी, मनजोगी, वचनजोगी, कायजोगी, अजोगी
6	पृथ्वीकाय,अप्काय,तेउकाय, वायुकाय , वनस्पतीकाय, त्रसकाय	सकषायी,क्रोधकषायी,मानकषायी, मायाकषायी,लोभकषायी,अकषायी
7	नारकी, तिर्यंच, तिर्यंचणी, मनुष्य, मनुष्यणी, देव, देवी	
8		सलेशी[8], कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी , तेजोलेशी, पद्मलेशी, शुक्ललेशी, अलेशी
9	1 पृथ्वीकाय, 2 अप्काय, 3 तेउकाय, 4 वायुकाय, 5 वनस्पतिकाय, 6 दोइंद्रिय, 7 तेइंद्रिय, 8 चौरेंद्रिय, 9 पंचेंद्रिय	
10	एकेंद्रिय से पंचेंद्रिय के अपर्याप्ता[9] पाँच और पर्याप्ता पाँच मिलाकर दस	
11	एकेंद्रिय, दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौरेंद्रिय, नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी, वैमानिक	
12	6 काय के अपर्याप्ता और पर्याप्ता:12	
13		6 लेश्या के अपर्याप्ता, पर्याप्ता 12 तथा अलेशी 1 = 13

[8] **लेश्या -** कषाय एवं योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न आत्मा के शुभ-अशुभ परिणामों को लेश्या कहते हैं। जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त होती है, वह लेश्या कहलाती है। [9]**अपर्याप्ता -** वह अवस्था, जिसमें जीव जितनी पर्याप्तियाँ बाँधने वाला है, उन्हें पूर्ण रूप से नहीं बाँध लेता, तब तक उसे अपर्याप्ता कहते हैं। [10] **पर्याप्ता -** वह अवस्था, जिसमें जीव जितनी पर्याप्तियाँ बाँधने वाला है, उन्हें पूर्ण रूप से बाँध लेता है, उसे पर्याप्ता कहते हैं।

संसारी जीवों के 14 भेद : (1) *सुक्ष्म एकेंद्रिय अपर्याप्त (2) सुक्ष्म एकेंद्रिय पर्याप्त (3) बादर एकेंद्रिय अपर्याप्त (4) बादर एकेंद्रिय पर्याप्त (5) दोइंद्रिय अपर्याप्त (6) दोइंद्रिय पर्याप्त (7) तेइंद्रिय अपर्याप्त (8) तेइन्द्रिय पर्याप्त (9) चौरेन्द्रिय अपर्याप्त (10) चौरेन्द्रिय पर्याप्त (11) +असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त (12) ^असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त (13) संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त (14) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त

व्यवहार विस्तार नय से कुल 563 प्रकार के जीव माने गए हैं - नारकी: 14 + तिर्यंच: 48 + मनुष्य: 303 + देव: 198 कुल = 563 भेद।

नारकी के 14 भेद

नरक - जहाँ शुभ फल देने वाले पुण्यकर्म विद्यमान नहीं होते, वह नरक है। जहाँ जीव रोता है, चिल्लाता है, जहाँ परमाधामी देव उसे कष्ट देते हैं, वह नरक है। जिस स्थान से सुखरूपी अर्क समाप्त हो गया है और जहाँ केवल दुख ही दुःख है, वह नरक है।

सात नरकों के नाम: (1) धम्मा (2) वंशा (3) शिला (4) अंजना (5) रिठ्ठा (6) मघा (7) माघवती

उसके गोत्र : (1) रत्नप्रभा (2) शर्कराप्रभा (3) बालुकाप्रभा (4) पंकप्रभा (5) धूम्रप्रभा (6) तमसप्रभा (7) तमस्तमःप्रभा। इन सात नरकों के अपर्याप्ता 7, पर्याप्ता 7 कुल 14 भेद नारकी के कहे गए हैं।

इन के अर्थ इस प्रकार हैं : (1) रत्नप्रभा - जिसमें 16 जातियों के रत्नों की अधिकता वाली पृथ्वी होती है। (2) शर्कराप्रभा - जिसमें तीक्ष्ण, टेढ़े-मेढ़े कंकड़-पत्थर होते हैं। (3) बालुकाप्रभा - जिसमें रेत (बालु) होती है। (4) पंकप्रभा - जिसमें रक्त और माँस के कीचड़ जैसे पुद्गल होते हैं। (5) धूम्रप्रभा - जिसमें धुआँ होता है। (6) तमस्प्रभा - जिसमें अंधकार होता है। (7) तमस्तमः प्रभा - जिसमें घोर अंधकार होता है।

---

*__सूक्ष्म__ एकेंद्रिय - इसमें सूक्ष्म पृथ्वीकाय, सूक्ष्म अपकाय, सूक्ष्म तेउकाय, सूक्ष्म वायुकाय, और सूक्ष्म वनस्पतिकाय आते हैं। बादर एकेंद्रिय - इसी प्रकार समझना चाहिए। निगोद - निगोद में सूक्ष्म वनस्पति और साधारण वनस्पति के अपर्याप्त और पर्याप्त - ये चार भेद आते हैं।

+**असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त -** इसमें असंज्ञी नारकी, संमूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय, संमूर्च्छिम मनुष्य और असंज्ञी देव आते हैं। ^**असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त -** इसमें संमूर्च्छिम जलचर, स्थलचर, उरपर, भुजपर और खेचर- ये पाँच तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव आते हैं।

सात नरकों का विस्तार

प्रथम नरक का पिंड 1,80,000 योजन का है। उस में से ऊपर 1,000 योजन और नीचे 1,000 योजन के दलों को छोड़कर बीच में 1,78,000 योजन का पोलार होता है। इस में होते हैं **-13** पाथडे **12** आंतरे। ऊपर के दो आंतरे छोड़कर, नीचे के $_{10}$ **आंतरे में 10 असुरकुमार** आदि भवनपति देव निवास करते हैं। 13 पाथड़ों में कुल **30 लाख नरकावास** हैं। सातों नरकों के प्रत्येक पाथडे **3,000 योजन** के है, जिसमें नारकी जीव रहते हैं। नारकी जीवों के जन्म के लिए असंख्यात कुम्भियाँ हैं। असंख्यात नारकी हैं। प्रथम नरक के तेरहवें पाथड़े के नीचे चार बोल होते हैं। (1) 20,000 योजन का **घनोदधि** - (बर्फ के समान घन जल) (2) असंख्यात योजन का **घनवात** - (घना भारी वायु - जैसे रसोईघर के गैस सिलेंडर की गैस) (3) असंख्यात योजन का **तनुवात** - (हल्का वायु -जैसे गुब्बारे में भरी हवा) (4) असंख्यात योजन का आकाश- (घनवात व तनुवात से भिन्न प्रकार की वायु, परंतु यह आकाशास्तिकाय द्रव्य नहीं है)

परिभाषाएँ : पाथड़ा: अर्थात् "प्रतर" भवन के माले में बने फर्श या स्लैब के समान अलग भाग करनेवाला स्तर।

आंतरा: दो पाथड़ों के बीच का भाग, जो पाथड़े से भिन्न प्रकार की पृथ्वी से बना होता है। आंतरा कोई पोलापन नहीं होता।

प्रथम नरक के नीचे क्रम से दूसरी से लेकर सातवीं नरक होती हैं। सभी नरकों के नीचे प्रथम नरक में बताए गए चार बोल होते हैं। इन नरकों के आंतरे खाली होते हैं। सातवीं नरक में ऊपर और नीचे 52,500 योजन दलों को रखें, तो बीच में 3,000 योजन का पोलार होता है।

सातवीं नरक के नीचे असंख्यात योजन तक आकाश लोक के अंत तक है, और फिर उसके नीचे अनंत अलोक आरंभ होता है। अन्य माहिती नीचे दी गई है।

सात नरक का विवरण - कोष्टक

नर्क	पिंड(योजन)	पोलान(योजन)	पाथडा	आंतरा	नरकवास
1	1,80,000	1,78,000	13	12	30 लाख
2	1,32,000	1,30,000	11	10	25लाख
3	1,28,000	1,26,000	9	8	15 लाख
4	1,20,000	1,18,000	7	6	10 लाख
5	1,18,000	1,16,000	5	4	3 लाख
6	1,16,000	1,14,000	3	2	99,995
7	1,08,000	3,000	1	0	5
				कुल नरकवास:	**84 लाख**

तिर्यंच के 48 भेद

जो तिर्च्छे (आड़े) रूप से चलता है और जिसकी वृद्धि तिर्च्छे रूप में होती है, उसे तिर्यंच कहते हैं।

एकेन्द्रिय (स्थावर) तिर्यंच के 22 भेद:

(1) सुक्ष्म पृथ्वीकाय के अपर्याप्त और पर्याप्त, बादर पृथ्वीकाय के अपर्याप्त, पर्याप्त।	4
(2) सुक्ष्म अप्काय के अपर्याप्त और पर्याप्त, बादर अप्काय के अपर्याप्त, पर्याप्त।	+4
(3) सुक्ष्म तेउकाय के अपर्याप्त और पर्याप्त, बादर तेउकाय के अपर्याप्त, पर्याप्त।	+4
(4) सुक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्त और पर्याप्त, बादर वायुकाय के अपर्याप्त, पर्याप्त।	+4
(5) वनस्पतिकाय के सुक्ष्म, प्रत्येक और साधारण, इन तीनों के अपर्याप्त, पर्याप्त।	+6
विकलेन्द्रिय के 6 भेद:	
(1) दोइन्द्रिय: अपर्याप्त और पर्याप्त (2) तेइन्द्रिय: अपर्याप्त और पर्याप्त	
(3) चौरेन्द्रिय: अपर्याप्त और पर्याप्त	6
तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 20 भेद :	
(1) गर्भज जलचर के अपर्याप्त, पर्याप्त - संमूर्च्छिम जलचर के अपर्याप्त, पर्याप्त	4
(2) गर्भज स्थलचर के अपर्याप्त, पर्याप्त - संमूर्च्छिम स्थलचर के अपर्याप्त, पर्याप्त	+4
(3) गर्भज उरपर के अपर्याप्त, पर्याप्त - संमूर्च्छिम उरपर के अपर्याप्त, पर्याप्त	+4
(4) गर्भज भुजपर के अपर्याप्त, पर्याप्त - संमूर्च्छिम भुजपर के अपर्याप्त, पर्याप्त	+4
(5) गर्भज खेचर के अपर्याप्त, पर्याप्त - संमूर्च्छिम खेचर के अपर्याप्त, पर्याप्त	+4

तिर्यंच के कुल भेद - 22 + 6 + 20 = 48

मनुष्य के 303 भेद

जो मनन (चिंतन) कर सकता है, वह मनुष्य है।

15 कर्मभूमि के मनुष्य, 30 अकर्मभूमि के मनुष्य, 56 अंतरद्वीप के मनुष्य = 101, इन क्षेत्रों के गर्भज मनुष्य अपर्याप्त 101+ गर्भज मनुष्य पर्याप्त 101= 202 तथा +101 क्षेत्रों के संमूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त = 303 भेद

कर्मभूमि क्या है? असि: शस्त्र चलाना, (2) मसि: लेखन करना, व्यापार करना, (3) कृषि: खेती करना। इन तीन प्रकार के व्यवसाय करके जीवन निर्वाह करने वाले क्षेत्र को कर्मभूमि कहते हैं। जीस भूमि पर मोक्षमार्ग को जानने वाले और उसका उपदेश देने वाले तीर्थंकर आदि उत्पन्न हो सकते हैं, उसे कर्मभूमि कहते हैं।

कर्मभूमि के क्षेत्र कितने और कहाँ हैं? 5 भरत, 5 ऐरावत, 5 महाविदेह ये 15 कर्मभूमि क्षेत्र मध्यलोक में एक लाख योजन का जंबूद्वीप स्थित है - (जो थाली के आकार में गोल होता है, बाकी के असंख्य द्वीप समुद्र कंगन जैसे गोल है।) इस जंबूद्वीप में 3 कर्मभूमि क्षेत्र हैं - 1 भरत, 1 ऐरावत, 1 महाविदेह।

इसको घेरे हुए 2 लाख योजन का लवण समुद्र है। इसके बाद 4 लाख योजन का धातकीखंड द्वीप है, जिसमें 2 भरत, 2 ऐरावत और 2 महाविदेह = 6 क्षेत्र हैं।

इसको घेरे हुए 8 लाख योजन का कालोदधि समुद्र है। इसको घेरके 8 लाख योजन का अर्धपुष्कर द्वीप है, उसमें 2 भरत, 2 ऐरावत और 2 महाविदेह = 6 क्षेत्र हैं।

अतः जंबूद्वीप में 3 क्षेत्र + घातकीखंड में 6 क्षेत्र + अर्धपुष्कर द्वीप में 6 क्षेत्र कुल 15 कर्मभूमि क्षेत्र

अकर्मभूमि क्या है? जहाँ तीनों कर्म (शस्त्र, लेखन, खेती) नहीं होते, जहाँ जीव दस प्रकार के कल्पवृक्षों के माध्यम से जीवन जीते है - वह अकर्मभूमि कहलाती है।

अकर्मभूमि के 30 क्षेत्र हैं: 5 हेमवय, 5 हिरण्यवय, 5 हरिवास, 5 रम्यकवास, 5 देवकुरु, 5 उत्तरकुरु = 30 अकर्मभूमि क्षेत्र।

इन में से 6 क्षेत्र जंबूद्वीप में हैं, 1 हेमवय, 1 हिरण्यवय, 1 हरिवास, 1 रम्यकवास, 1 देवकुरु, 1 उत्तरकुरु

12 क्षेत्र धातकीखंड द्वीप में हैं, 2 हेमवय, 2 हिरण्यवय, 2 हरिवास, 2 रम्यकवास, 2 देवकुरु, 2 उत्तरकुरु

12 क्षेत्र अर्धपुष्कर द्वीप में हैं, 2 हेमवय, 2 हिरण्यवय, 2 हरिवास, 2 रम्यकवास, 2 देवकुरु, 2 उत्तरकुरु

अंतरद्वीप के मनुष्यों के 56 भेद

अंतरद्वीप के मनुष्य याने क्या? चारों ओर समुद्र होता है और बीच में भूमि हो, वह द्वीप कहलाता है। जब एक द्वीप के बाद दूसरा द्वीप हो, तो वह अंतरद्वीप कहलाता है। ये मनुष्य लवणसमुद्र के मध्य में स्थित होते हैं, या दो द्वीपों के बीच अंतर होता हैं, इसलिए इन्हें अंतरद्वीप के मनुष्य कहा जाता है। अकर्मभूमि और अंतरद्वीपों में रहने वाले सभी मनुष्य जुगलिया (जोड़े में उत्पन्न) होते हैं।

जंबूद्वीप में भरत क्षेत्र की सीमा पर एक पर्वत है **चूलहिमवंत** नामक, जो सोने जैसा पीला दिखाई देता है। इस पर्वत के पूर्व और पश्चिम दोनों किनारों पर, लवणसमुद्र में अंतर-अंतर पर 7 द्वीप स्थित हैं। सातवें अंतरद्वीप का किनारा चूलहिमवंत पर्वत के किनारे से 8,400 योजन दूर स्थित है। इस प्रकार, इस पर्वत के चारों दिशाओं में 7-7 अंतरद्वीप हैं। कुल 28 द्वीप है। ये सभी द्वीप स्वतंत्र हैं, आपस में जुड़े हुए नहीं हैं। सभी अंतरद्वीप थाली के आकार में गोलाकार होते हैं।

ये अंतरद्वीप कहाँ स्थित हैं?

जगती की कोट (किनारे) से जब हम लवणसमुद्र में 300 योजन भीतर जाते हैं, तब पहला अंतरद्वीप आता है -जो 300 योजन लंबा और चौड़ा, गोलाकार होता है।

पहले अंतरद्वीप से 400 योजन दूर दूसरा अंतरद्वीप आता है, जो 400 योजन लंबा और चौड़ा होता है। दूसरे अंतरद्वीप से 500 योजन दूर तीसरा अंतरद्वीप, तीसरे अंतरद्वीप से 600 योजन दूर चौथा अंतरद्वीप, चौथे अंतरद्वीप से 700 योजन दूर पाँचवाँ अंतरद्वीप, पाँचवे अंतरद्वीप से 800 योजन दूर छट्ठा अंतरद्वीप, छट्ठे अंतरद्वीप से 900 योजन दूर सातवाँ अंतरद्वीप आता है, जो 900 योजन लंबा और चौडा है। इस प्रकार, दोनों ओर 7-7 अंतरद्वीप, चारों ओर के कुल 28 अंतरद्वीप है। एक अंतरद्वीप से दुसरा अंतरद्वीप जीतने योजन दूर है, उनके लंबाई - चौड़ाई का माप भी वही है।

इसी प्रकार, ऐरवत क्षेत्र की सीमा पर शिखरी पर्वत है, जो चूलहिमवंत के समान ही है। वहाँ भी उपरोक्त वर्णन के अनुसार 28 अंतरद्वीप हैं। अतः कुल 28 + 28 = 56 अंतरद्वीप है।

संमूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति के स्थान : 101 क्षेत्रों में जो संमूर्च्छिम मनुष्य होते हैं वे 101 गर्भज मनुष्यों की अशुचि के 14 स्थानों में उत्पन्न होते है।(ये

14 स्थान प्रतिक्रमण के पाठ में दिए गए संमूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति स्थानों के अनुसार हैं।)

कर्मभूमि के 15 और अकर्मभूमि के 30 क्षेत्रों का कोष्ठक

क्षेत्र का नाम	भरत	ऐरवत	महा विदेह	कुल कर्म भूमि	हेम वय	हिर ण्यवय	हरि वास	रम्य क्वास	देव कुरु	उत्तर कुरु	कुल अकर्म भूमि
जंबूद्वीप मे	1	1	1	3	1	1	1	1	1	1	6
घातकीखंड में	2	2	2	6	2	2	2	2	2	2	12
अर्धपुष्कर में	2	2	2	6	2	2	2	2	2	2	12
कुल क्षेत्र	5	5	5	15	5	5	5	5	5	5	30

मनुष्यों के 303 भेदों की समझ का कोष्ठक

भेद क्षेत्र का नाम	भरत भेद	ऐरवत भेद	महा विदेह भेद	कुल कर्म भेद	हेम वय भेद	हिर ण्यवय भेद	हरि वास भेद	रम्य क्वास भेद	देव कुरु भेद	उत्तर कुरु भेद	कुल अकर्म भेद
जंबूद्वीप मे	3	3	3	9	3	3	3	3	3	3	18
घातकीखंड में	6	6	6	18	6	6	6	6	6	6	36
अर्धपुष्कर में	6	6	6	18	6	6	6	6	6	6	36
कुल भेद	15	15	15	45	15	15	15	15	15	15	90

अतः कर्मभूमि के मनुष्यों के भेद: $15 \times 3 = 45$
अकर्मभूमि के मनुष्यों के भेद: $30 \times 3 = 90$
लवणसमुद्र के अंतरद्वीपों के मनुष्यों के भेद : $56 \times 3 = 168$
कुल मनुष्य भेद: $101 \times 3 = 303$

देवताओं के 198 भेद

देव, जो दिव्य ऋद्धियों का भोग करते है, वे देव कहलाते है। जिसका वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, महल, वैक्रिय लब्धियाँ आदि दिव्य हो और जो इच्छानुसार क्रीड़ा कर सकें, वे देव कहलाते है।

भवनपति देवों के 25 भेद: 10 भवनपति + 15 परमाधामी

10 भवनपति देवों के नाम: (1) असुरकुमार (2) नागकुमार (3) सुपर्णकुमार (4) विद्युतकुमार (5) अग्निकुमार (6) द्वीपकुमार (7) उदधिकुमार (8) दिशाकुमार (9) वायु (पवन) कुमार (10) स्तनितकुमार। यह देव भवनों में निवास करते हैं, इसलिए इन्हें **भवनपति** कहा जाता है।

15 परमाधामी देवों के नाम: (1) अंब (2) अंबरिस (3) साम (4) सबल (5) रुद्र (6) वैरुद्र (7) काल (8) महाकाल (9) असिपत्र (10) धनुष्य (11) कुंभ (12) बालु (13) वैतरणी (14) खरस्वर (15) महाघोष। जो घोर पापों का आचरण करने वाले, क्रूर परिणाम उत्पन्न करने वाले, अत्यंत अधार्मिक देव होते हैं, उन्हें **परमाधामी** कहा जाता है।

वाणव्यंतर देवों के 26 भेद : 16 व्यंतर + 10 जृंभक

16 वाणव्यंतर देवों के नाम: (1) पिशाच (2) भूत (3) यक्ष (4) राक्षस (5) किन्नर (6) किंपुरुष (7) महोरग (8) गंधर्व (9) आणपन्नी (10) पाणपन्नी (11) ईसीवाई (12) भुईवाई (13) कंदिय (14) महाकंदिय (15) कोहंड़ (16) पयंगदेव। जो देव वनों की गुफाओं, पर्वतों, जंगलों आदि के अंतर - जगह में रहते हैं और जिन्हें घूमने-फिरने की रुचि होती है, उन्हें **वाणव्यंतर देव** कहा जाता है।

10 जृंभक देवों के नाम : (1) आण जृंभका (2) पाण जृंभका (3) लयण जृंभका (4) सयण जृंभका (5) वत्थ जृंभका (6) पुष्प जृंभका (7) फल जृंभका (8) बीज जृंभका (9) विज्जु जृंभका (विद्युत/अग्नि) (10) अवियत जृंभका (घर का सामान)

जो देव निरंतर क्रीड़ा में लीन रहते हैं, उन्हें जृंभका देव कहा जाता है। **"जृंभका"** का अर्थ होता है **मालिक देव**।

{केवल जानकारी हेतु: कोई प्रश्न नहीं पूछे जाएँगे।

{(1) अधोलोक में प्रथम नरक के तीसरे से बारहवें आंतरे तक 10 भवनपति देव निवास करते हैं। तीसरे आंतरे में असुरकुमार के साथ 15 **परमाधामी देव** भी रहते हैं। (2) समपृथ्वी से नीचे प्रथम नरक का जो 1000 योजन ऊपरी भूमि है, उसमें से ऊपर और नीचे 100-100 योजन छोड़ देने पर, बीच के 800 योजन के भूमि में **वाणव्यंतर देवों** के नगर स्थित हैं। (3) उस 100 योजन के ऊपरी भाग में, ऊपर और नीचे 10 -10 योजन भूमि छोड़ देने पर, बीच के 80 योजन में **जृंभक देव** रहते हैं। (4) **ज्योतिषी देव** - समपृथ्वी से 790 योजन से 900 योजन की ऊँचाई पर, मेरु

पर्वत के चारों ओर स्थित हैं। ये देव तिच्छ्रालोक में स्थित हैं। (5) **वैमानिक देव**- ऊर्ध्वलोक में स्थित होते हैं। (6) **पहला किल्विषिक -** पहले और दूसरे देवलोक के नीचे है। **दूसरा किल्विषिक -** तीसरे और चौथे देवलोक के नीचे है। **तीसरा किल्विषिक** - पाँचवे और छट्ठे देवलोक के नीचे स्थित है। (7) पाँचवे देवलोक के पास, त्रसनाड़ी के किनारे **9 लोकान्ति**क देव निवास करते हैं।}

ज्योतिषी देवों के 10 भेद

10 **ज्योतिषी देवों के नाम:** (1) चंद्र (2) सूर्य (3) ग्रह (4) नक्षत्र (5) तारा। यह पाँच चर (चलायमान) हैं, वे अढ़ाई द्वीप में हैं। इनके ही नाम वाले अन्य पाँच स्थिर देव अढ़ाई द्वीप के बाहर हैं। कुल 10 भेद। वे प्रकाश करने वाले देव होते हैं, इसलिए उन्हें ज्योतिषी देव कहा जाता है।

वैमानिक देवों के 38 **भेद :** 12 देवलोक, 3 किल्विषिक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रेवेयक, 5 अनुत्तर विमान

12 **देवलोक के नाम:** (1) सुधर्मा (2) ईशान (3) सनत्कुमार (4) माहेन्द्र (5) ब्रह्मलोक (6) लांतक (7) महाशुक्र (8) सहस्रार (9) आणत (10) प्राणत (11)) आरण (12) अच्युत। देव विमानों में निवास करते हैं, इसिलए उन्हें **वैमानिक देव** कहा जाता है।

3 **किल्विषिक के नाम:** (1) त्रय (तीन) पल्या (2) त्रय (तीन) सागरिया (3) तेरह सागरिया। जो जीव तीर्थंकर की आशातना करते हैं, उत्सुत्र प्ररूपणा करते हैं, वे ऐसे **किल्विषिक देव** बनते हैं।

9 **लोकान्तिक के नाम:** (1) सारस्वत (2) आदित्य (3) वन्हि (4) वरुण (5) गर्दतोया (6) तोषिया (7) अव्याबाधा (8) अगिच्चा (9) रिठा।
ये देव ब्रह्मदेवलोक के अंतिम भाग में रहते है, उन्हें **लोकान्तिक** कहा जाता है।

9 **ग्रैवेयक के नाम:** (1) भद्दे (2) सुभद्दे (3) सुजाए (4) सुमाणसे (5) प्रियदंसणे (6) सुदंसणे (7) आमोहे (8) सुपडिबद्धे (9) जशोधरे। इन देवों के विमान पुरुष के आकृति जैसे लोक में ग्रीवा (गर्दन) के स्थान पर रहते हैं इसलिए उन्हें **ग्रेवेयक देव** कहा जाता है।

5 **अनुत्तर विमान के नाम:** (1) विजय (2) विजयंत (3) जयंत (4) अपराजित (5) सर्वार्थसिद्ध। इस विमानों में निवास करने वाले देवों के इन्द्रिय

विषय - शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श आदि - सबसे श्रेष्ठ होते हैं, इसलिए उन्हें अनुत्तर देव कहा जाता है।

कुल देव भेद : भवनपति: 25, वाणव्यंतर: 26, ज्योतिषी: 10, वैमानिक: 38 = 99 देव। इनमें - 99 अपर्याप्त 99 पर्याप्त = 198 देव भेद।

2. अजीव तत्त्व

जो जड़ हो और चैतन्य रहित हो, उसे अजीव कहते हैं। अजीव का स्वरूप ही **अजीव तत्त्व** कहलाता है।

अजीव तत्त्व के 14 भेद इस प्रकार हैं:

1 धर्मास्तिकाय का स्कंध, 2 स्कंधदेश*, 3 स्कंधप्रदेश, + 3 भेद
4 अधर्मास्तिकाय का स्कंध, 5 स्कंधदेश, 6 स्कंधप्रदेश, + 3 भेद
7 आकाशास्तिकाय का स्कंध, 8 स्कंधदेश, 9 स्कंधप्रदेश, + 3 भेद
10 अद्धासमयकाल +1 भेद
कुल = 3 + 3 + 3 + 1 = 10 अरूपी अजीव
1 से 10 - अरूपी अजीव (अदृश्य)

11 पुद्गलास्तिकाय का स्कंध, 12 देश, 13 प्रदेश, 14 परमाणु पुद्गल : 4 भेद
11 से 14- रूपी अजीव (द्रव्य) अतः कुल अजीव तत्त्व के भेद 14।

व्यवहार विस्तार नय से अजीव के 560 भेद

अरूपी अजीव के 30 भेद:

धर्मास्तिकाय के 5 भेद: (1) द्रव्य की दृष्टि से - एक (2) क्षेत्र की दृष्टि से - लोक प्रमाण (3) काल की दृष्टि से - अनादि-अनंत (4) भाव की दृष्टि से - अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श (अरूपी) (5) गुण की दृष्टि से - चलन सहाय (चलने में सहायता देने वाला)

अधर्मास्तिकाय के 5 भेद: (6) द्रव्य की दृष्टि से - एक (7) क्षेत्र की दृष्टि से - लोक प्रमाण (8) काल की दृष्टि से - अनादि-अनंत (9) भाव की दृष्टि से - अवर्ण,

---

*धर्म, अधर्म और आकाशास्तिकाय के देश और प्रदेश स्कंध से पृथक नहीं हो सकते, इसलिए उन्हें "स्कंधदेश" और "स्कंधप्रदेश" कहा गया है। जबकि पुद्गलास्तिकाय के देश व प्रदेश स्कंध से पृथक हो सकते हैं।

अगंध, अरस, अस्पर्श (अरूपी) (10) गुण की दृष्टि से - स्थिर सहाय (स्थिरता में सहायता देने वाला)। **आकाशास्तिकाय के 5 भेद :** (11) द्रव्य की दृष्टि से - एक (12) क्षेत्र की दृष्टि से - लोक और अलोक दोनों में व्याप्त (13) काल की दृष्टि से - अनादि-अनंत (14) भाव की दृष्टि से - अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श (अरूपी) (15) गुण की दृष्टि से - अवगाहना (स्थान प्रदान करने) का गुण। **काल* के 5 भेद:** (16) द्रव्य की दृष्टि से - अनंत (17) क्षेत्र की दृष्टि से - अढ़ाई द्वीप में व्याप्त (18) काल की दृष्टि से -अनादिअनंत+ (19) भाव की दृष्टि से -अवर्णे, अगंध, अरस, अस्पर्श (अरूपी) (20) गुण की दृष्टि से - वर्तना लक्षण (परिवर्तन लावे)। उपर्युक्त 20 भेदों में पूर्व बताए गए 10 अरूपी अजीव के भेद जोड़कर कुल: **30 अरूपी अजीव के भेद।**

रुपी अजीव के 530 भेद

पुद्गल में वर्ण के अनुसार 5 प्रकार: (1) काला (2) नीला (या हरा) (3) लाल (4) पीला (5) सफेद। प्रत्येक वर्ण के भीतर अन्य चार वर्ण नहीं पाए जाते, लेकिन शेष में निम्नलिखित भेद पाए जाते हैं: 2 गंध, 5 रस, 5 संठाण (संरचना), 8 स्पर्श। अत: 5 वर्ण × 20 गुण = **100 भेद**

स्कंध, देश, प्रदेश की परिभाषा : प्रदेशों के समूह को **अस्तिकाय** कहते हैं। अखंड द्रव्यरूप, संपूर्ण पदार्थ को अथवा अनंत आदि परमाणुओं के एकत्र समूह को स्कंध कहते हैं। स्कंध का कुछ भाग जो स्कंध से संबंधित है, उसे देश कहते हैं। स्कंध का अविभाज्य अंश, जिसे दो भागों में नहीं बाँटा जा सकता, परंतु जो स्कंध में ही संलग्न होता है, उसे प्रदेश कहते हैं। वही **प्रदेश** यदि स्कंध से अलग हो जाए और जिसे केवली की दृष्टि से भी विभाजित न किया जा सकें, उसे **परमाणु** कहते हैं।

---

*काल को अस्तिकाय नहीं कहा जाता, क्योंकि हर समय का काल भिन्न होता है। भूतकाल समाप्त हो गया, भविष्यकाल अभी उत्पन्न नहीं हुआ, और वर्तमान तो केवल एक समय का है। लेकिन यही वर्तमान काल अनंत जीवों और द्रव्यों पर एक साथ प्रभाव डालता है, इसीलिए उसे द्रव्य से अनंत कहा गया है।
+अनादि-अनंत - जिसकी न शुरूआत (आदि) है और न अंत।

गंध (2 प्रकार): (1) सुरभिगंध (सुगंध) (2) दुरभिगंध (दुर्गंध) प्रत्येक गंध में दूसरी गंध नहीं होती, परंतु अन्य 23-23 भेद पाए जाते हैं - 5 वर्ण, 5 रस, 5 संठान, 8 स्पर्श। अर्थात् $2 \times 23 =$ **46 भेद।**

रस (5 प्रकार): (1) तीखा (2) कड़वा (3) कसैला (4) खट्टा (5) मीठा। प्रत्येक रस में अन्य चार रस नहीं होते, परंतु अन्य 20 भेद मिलते हैं - ये 20: 5 वर्ण, 2 गंध, 5 संठाण, 8 स्पर्श। अतः $5 \times 20 =$ **100 भेद।**

संठाण (आकार) 5 प्रकार: (1) परिमंडल (चूड़ी के आकार का) (2) वट्ट (गोल लड्डू जैसा) (3) त्रंस (त्रिकोण) (4) चौरस (चौकोर) (5) आयात (छड़ी जैसा) प्रत्येक संठाण में अन्य चार संठाण नहीं होते, परंतु शेष 20 भेद मिलते हैं: 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 8 स्पर्श। अतः $5 \times 20 =$ **100 भेद।**

स्पर्श 8 प्रकार: (1) खुरदुरा (2) मुलायम (3) भारी (4) हल्का (5) ठंडा (6) गर्म (7) चिकना (8) सूखा। प्रत्येक स्पर्श में उसका एक विरोधी स्पर्श नहीं होता (जैसे - खुरदुरा व चिकना), शेष 6 स्पर्श प्राप्त होते हैं। उसके अति**रिक्त 20 भेद 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 5 संठाण, 6 स्पर्श। अतः $23 \times 8 = 184$ भेद**

अतः वर्ण100, गंध 46, रस100, संठाण100, स्पर्श 184 = कुल 530, इस प्रकार: रूपी अजीव के भेद = 530, अरूपी अजीव के भेद = 30 कुल = 560 भेद।

पाँच द्रव्यों की दृष्टांत से समझ: (1) धर्मास्तिकाय: जिसके द्वारा जीव और पुद्गल गमन कर सकते हैं - जैसे मछली को गति के लिए जल का आधार और लँगड़े को चलने के लिए लकड़ी सहायक होती है। **(2) अधर्मास्तिकाय:** जिसके द्वारा जीव और पुद्गल स्थिर रहते हैं- जैसे थके हुए यात्रीयों को छाया, स्थिर होने में उपकारक होते है। **(3) आकाशास्तिकाय:** जो सभी द्रव्यों को स्थान (रिक्त जगह) प्रदान करता है - जैसे ठोस दीवार में कील गड़ सकती है, या कमरे में एक दीपक की रोशनी भी समा सकती है और हज़ार दीपकों की भी। **(4) काल:** जिससे नया - पुराना पहचाना जाता है - जैसे सूर्य-चंद्र की गति से समय को मापा जाता है। बच्चा जन्मता है, युवा होता है, फिर वृद्ध - यह कार्य काल के कारण होता है। **(5) पुद्गल:** जिसका स्वभाव सड़ना, गिरना और विनाशशील होता है - जैसे ध्वनि, अंधकार, चंद्रमा की प्रभा, छाया, सूर्य का प्रकाश, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि, ये सभी जड पदार्थ पुद्गल कहलाते हैं। ये पुद्गल 14 राजलोक के में फैले हुए होते हैं, और उनके प्रदेशों की गणना: 1 प्रदेशी, 2 प्रदेशी, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10 प्रदेशी... यावत्: संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी या अनंत प्रदेशी होती हैं।

3. पुण्यतत्त्व

शुभ कमाया हुआ शुभ कर्मों के उदय से, आत्मा को सुखद फल प्रदान करता है, उसे पुण्य कहा जाता है। या फिर- जिसके करने से शुभ कर्मों का संचय और उदय होने पर सुख का अनुभव होता है, वह पुण्य कहलाता है। इसका स्वरूप पुण्यतत्त्व कहलाता है।

पुण्य बंध के 9 भेद: (1) अन्नपुन्ने: अन्न (भोजन) दान से पुण्य का उपार्जन होता है। **(2) पाणपुन्ने:** जल (पेय) दान से पुण्य का उपार्जन होता है। **(3) लयणपुन्ने:** स्थान या जगह देने से पुण्य का उपार्जन होता है। **(4) शयनपुन्ने:** शैय्या, पाट, पाटले आदि देने से पुण्य का उपार्जन होता है। **(5) वत्थपुन्ने:** वस्त्र देने से पुण्य का उपार्जन होता है। **(6) मनपुन्ने:** मन को शुभ रखने से पुण्य का उपार्जन होता है। **(7) वचनपुन्ने:** शुभ वचन बोलने से पुण्य का उपार्जन होता है। **(8) कायपुन्ने:** शरीर से शुभ प्रवृत्ति करने से पुण्य का उपार्जन होता है। **(9) नमस्कारपुन्ने:** गुणीजनों को नमस्कार करने से पुण्य का उपार्जन होता है।

पुण्यतत्त्व 42 शुभ फलों से भुगता जाता है

वेदनीय कर्म के उदय से 1 भेद: (1) साता वेदनीय: सुख का अनुभव कराता है। **आयुष्य कर्म के उदय से 3 भेद: (2) देव का आयुष्य (3) मनुष्य का आयुष्य (4) तिर्यंच का आयुष्य (जुगलिया की अपेक्षा से) नामकर्म के उदय से 37 भेद: (5) देव गति (6) मनुष्य गति (7) पंचेन्द्रिय जाति (8) औदारिक शरीर (9) वैक्रिय शरीर* (10) आहारक शरीर (11) तैजस शरीर (12) कार्मण शरीर (13) औदारिक शरीर अंग-उपांग:** औदारिक शरीर के सारे अवयवों की प्राप्ति होना। **(14) वैक्रिय शरीर अंग-उपांग। (15) आहारक शरीर**

*देव और नारकी को वैक्रिय शरीर जन्म से मिलता है वह भवप्रत्ययिक। मनुष्य और तिर्यंच को तप आदि लब्धि से वैक्रिय शरीर होता है वह लब्धिप्रत्ययिक।

अंग-उपांग। (16) वज्रऋषभनाराच संघयण (17) समचतुरंस्र संस्थान: पूर्ण समरूप और शोभायुक्त आकृति। **(18) शुभ वर्ण:** (तीन: लाल, पीला, सफेद) **(19) शुभ गंध:** (एक: सुरभिगंध) **(20) शुभ रस:** (तीन: कसैला, खट्टा, मीठा) **(21) शुभ स्पर्श:** (चार: कोमल, हल्का, उष्ण, चिकना)। **(22) शुभ विहायोगति:** गंधहस्ति जैसी शुभ चाल। **(23) देवानुपूर्वी:** शरीर छोड़ते समय देवगति की ओर ले जाने वाला कर्म। **(24) मनुष्यानुपूर्वी:** शरीर छोड़ते समय मनुष्यगति की ओर ले जाने वाला कर्म। **(25) अगुरुलघु नाम:** शरीर न अधिक भारी न अत्याधिक हल्का। **(26) पराघात नाम:** जिससे जीव के शरीर में दूसरों को मार सकने की शक्ति मिले (जैसे साँप का विष) सिंहके नख आदि अथवा जिसके उदयसे जीव अन्योंके लिए अजेय बन जाए। अन्योंको प्रभावित करे। **(27) उच्छवास नाम:** जिससे श्वास-प्रश्वास की क्रिया संभव हो। **(28) उद्योत नाम:** जिससे शरीर शीत प्रकाश (चंद्रमा जैसा) उत्पन्न करें जैसें की चंद्र के पृथ्वीकाय का शरीर, चमकते जुगनु। **(29) आताप नाम:** जिससे शरीर गरम प्रकाश (सूर्य जैसा) उत्पन्न करें जैसें की सूर्य के पृथ्वीकाय का शरीर। **(30) तीर्थंकर नाम:** जिससे तीर्थंकर पद प्राप्त हो। **(31) निर्माण नाम:** जिससे अंग-उपांग सुव्यवस्थित प्राप्त हो। **(32) त्रस नाम:** जिस से स्वयं हलन चलन कर सके ऐसा शरीर प्राप्त हो। **(33) बादर नाम:** जिससे बादरता, स्थूलता प्राप्त हो। **(34) पर्याप्त नाम:** जिससे सभी आवश्यक पर्याप्तियाँ प्राप्त हों। **(35) प्रत्येक नाम:** जिससे जीवको स्वयंका स्वतंत्र शरीर प्राप्त हो। **(36) स्थिर नाम:** जिससे शरीर के दांत हड्डीयाँ आदि अंग स्थिर रहें। **(37) शुभ नाम:** जिससे शरीर सुंदर हो (नाभि से ऊपर)। **(38) सौभाग्य नाम:** जिससे जीव अन्योको प्रिय बने। **(39) सुस्वर नाम:** जिससे मधुर स्वर प्राप्त हो। **(40) आदेय नाम:** जिससे वचन प्रभावशाली, आदरणीय हो। **(41) यश:कीर्ति नाम:** जिससे संसार में यश और कीर्ति फैले।

गोत्रकर्म के उदय से: 1 भेद (42) उच्च गोत्र(जाति, बल आदि 8 बोल में श्रेष्ठता) पुण्य अघाती कर्म द्वारा ही भोगा जा सकता है। सो उसमें सिर्फ 4 अघाती कर्म की प्रकृतीयाँ होती है।

पुण्य की 42 प्रकृति

वेदनीय कर्म	आयुष्य कर्म	नाम कर्म	गोत्र कर्म
(1) शाता वेदनीय	(3) देव का, मनुष्य का, तिर्यच का	(37) **गति:** देव, मनुष्य **जाति:** पंचेन्द्रिय **शरीर:** औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण **अंगोपांग:** औदारिक, वैक्रिय, आहारक **संघयण:** वज्रऋषभनाराच **संस्थान:** समचतुरंस्त्र **शुभ:** वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, विहायोगति **आनुपूर्वी:** देव, मनुष्य **प्रत्येक प्रकृति:** अगुरुलघु, पराघात, उच्छ्वास, उद्योत, आताप, तीर्थंकर, निर्माण **त्रस दशक:** त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सौभाग्य, सुस्वर, आदेय,यशोकीर्ति	(1) उच्च गोत्र

4. पापतत्त्व

अशुभ कमाई द्वारा, अशुभ कर्मों के उदय से आत्मा को कड़वे फल प्रदान करता है, उसे पाप कहा जाता है। अर्थात् - जिसके करने से अशुभ कर्मों का संचय और उदय होने से दुख का अनुभव होता है, वह पाप कहलाता है। इसका स्वरूप पापतत्त्व कहलाता है।

पाप बंधन के 18 कारण (प्रकार)

(1) प्राणातिपात(जीव हिंसा) (2) मिथ्यावाद (झूठ बोलना) (3) अदत्तादान (चोरी) (4) मैथुन (काम संबंध) (5) परिग्रह (संग्रह, मोह) (6) क्रोध (7) मान (घमंड) (8) माया (छल) (9) लोभ (10) राग (11) द्वेष (12) कलह (झगड़ा) (13)

अभ्याख्यान (दोषारोपण) (14) पैशुन्य (निंदा) (15) परपरिवाद (अन्य की आलोचना) (16) रति-अरति (संसार में आसक्ति/धर्म में अनिच्छा) (17) माया-मोसो (छल और झूठ) (18) मिथ्या-दर्शन शल्य (गलत श्रद्धा)।

पाप के फल 82 प्रकार से भुगते जाते हैं:

ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से 5 भेद: (1) मति ज्ञानावरणीय: पाँचों इन्द्रियों और मन के माध्यम से प्राप्त होने वाला सच्चा (यथार्थ)ज्ञान मति ज्ञान है। इस पर जो आवरण है, वह मति ज्ञानावरणीय है। **(2) श्रुत ज्ञानावरणीय:** शब्दों के माध्यम से अर्थ का होने वाला यथार्थ ज्ञान या सूत्र ज्ञान ही श्रुतज्ञान है। इसके ऊपर का आवरण श्रुत ज्ञानावरणीय है। **(3) अवधि ज्ञानावरणीय:**आत्मा के माध्यम से रूपी द्रव्यों का जो सीमित यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है, उसे अवधि ज्ञान कहते हैं, तथा उसके ऊपर जो आवरण है, उसे अवधि ज्ञानावरणीय कहते हैं। **(4) मन:पर्यव ज्ञानावरणीय:**वह ज्ञान जो अढाईद्वीप में रहने वाले संज्ञी जीवों के मन के भावों को जानता है वह मन:पर्यवज्ञान है। इसके ऊपर का आवरण मनःपर्यव ज्ञानावरणीय है। **(5) केवल ज्ञानावरणीय:**संपूर्ण लोकालोक में रहे हुए सर्व द्रव्यो के और सर्व गुणों की सर्व पर्यायो को आत्मा द्वारा एक साथ जानने को केवलज्ञान कहते हैं। इस पर जो आवरण है, वह केवल ज्ञानावरणीय है।

दर्शनावरणीय कर्म के उदय से 9 भेद: (6) चक्षु दर्शनावरणीय: नेत्रों द्वारा किसी वस्तु का सामान्य बोध चक्षु दर्शन कहलाता है। उस पर आवरण। **(7) अचक्षु दर्शनावरणीय:** आँख और मन के अलावा अन्य इंद्रियों के माध्यम से किसी वस्तु का सामान्य बोध अचक्षु दर्शन कहलाता है।उस पर आवरण। **(8) अवधि दर्शनावरणीय:** आत्मद्रव्य के माध्यम से सीमित क्षेत्र में विद्यमान रुपी वस्तुओं का सामान्य ज्ञान,अवधिदर्शन है। इस पर आवरण। अवधिज्ञान या विभंगज्ञान होने से पहले होने वाले सामान्य ज्ञान पर आवरण। **(9) केवल दर्शनावरणीय:**संपूर्ण जगत् के समस्त पदार्थों का सामान्य ज्ञान केवलदर्शन है। उस पर आवरण। **(10) निद्रा:** वह सुख से सोवे है, सुख से जागे। **(11) निद्रा-निद्रा:** वह दर्द में सोवे, दर्द में जागे। **(12) प्रचला:** वह बैठे-बैठे सोवे। **(13) प्रचला-प्रचला:** वह बोलते-बोलते, चलते- चलते सोवे। **(14) थीणद्धि निद्रा:** दिन में सोचे गए साधारण या असाधारण कार्यों को नींद में करना थीणद्धि निद्रा है। जब

थीणद्रि निद्रा कर्म का उत्कृष्ट उदय होता है, तब चौथे आरे के वज्रऋषभनाराच संघयण वाले जीव में वासुदेव का आधा बल आ जाता है।

यदि कोई इस निद्रा में आयुष्य का बंध करता है, तो वह मर कर नरक में जाता है। (यह धारणा उत्कृष्ट बल की है।जघन्य बल या मध्यम बल के होने पर वह किसी भी गति में जा सकता है।)

वेदनीय कर्म के उदयसे 1 भेद: (15) असाता वेदनीय: दुख का अनुभव कराता है।

मोहनीय कर्म के उदयसे 26 भेद: (क) अनंतानुबंधी (4): **(16) क्रोध, (17) मान, (18) माया, (19) लोभ:** जो चार कषाय सम्यक् दर्शन में बाधक हैं, अनंत संसार को बढाते हैं। (ख) अप्रत्याख्यानी (4): **(20) क्रोध, (21) मान, (22) माया, (23) लोभ:** जो चार कषाय श्रावकता प्राप्त नहीं होने देते, एक वर्ष रहते हैं। (ग) प्रत्याख्यानावरणीय (4): **(24) क्रोध, (25) मान, (26) माया, (27) लोभ:** जो चार कषाय साधुता में बाधक हैं, चार माह रहते हैं। (घ) संज्वलन (4): **(28) क्रोध, (29) मान, (30) माया, (31) लोभ:** जो चार कषाय वीतरागता में बाधक हैं, पंद्रह दिन रहते हैं। (ङ) नौ नोकषाय (9): **(32) हास्य:** बिना कारण या कारण वश हँसी आना। **(33) रति:** संसार व पाप में रुचि। **(34) अरति:** धर्म में अरुचि व आलस्य। **(35) भय:** भय उत्पन्न होना। **(36) शोक:** चिंता, उदासी, शोक उत्पन्न होना। **(37) दुर्गंछा:** वस्तु/व्यक्ति से घृणा। **(38) स्त्रीवेद:** स्त्री को पुरुष समागम के भाव। **(39) पुरुषवेद:** पुरुष को स्त्री समागम के भाव। **(40) नपुंसकवेद:** नपुंसक को पुरुष और स्त्री दोनों के समागम के भाव। **(41) मिथ्यात्व मोहनीय:** नव तत्त्वों में व जैन धर्म में श्रद्धा न होना। सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर श्रद्धा न होना। जिनेश्वर भगवंत ने बताए तत्त्वों पर अरुची और अतत्त्वों पर रुचि करना।

आयुष्य कर्म के उदय से 1 भेद: (42) नरक का आयुष्य।

नामकर्म के उदय से 34 भेद: (43) नरक गति, (44) तिर्यंच गति, (45) एकेन्द्रिय जाति, (46) दोइन्द्रिय जाति (47) तेइन्द्रिय जाति, (48) चौरेन्द्रिय जाति

पाँच प्रकार के संघयण (हड्डियों की मजबूती): (49-53)

(49) ऋषभनाराच संघयण: इसके दोनों तरफ मर्कटबंध होते हैं और ऊपर एक

पट्टा होता है। **(50) नाराच संघयण:** इसके दोनों तरफ मर्कटबंध होते हैं। **(51) अर्धनाराच संघयण:** इसके एक ओर मर्कटबंध और दूसरी ओर केवल एक कील होता है। **(52) कीलिका संघयण:** दोनों हड्डियाँ एक कील से जुड़ी होती हैं। **(53) छेवटुं (सेवार्त) संघयण:** दोनों हड्डियाँ जुड़ी हुई हैं, कोई कील नहीं है।

पाँच प्रकार के संस्थान (शारीरिक आकार): (54–58)

(54) न्यग्रोध परिमंडल संस्थान: कमर से सिर तक शोभायमान शरीर, **(55) सादि संस्थान:** पैर से कमर तक शोभायमान शरीर, **(56) वामन संस्थान:** हाथ, पैर, सिर की आकृति छोटी, (नाटी) **(57) कुब्ज संस्थान:** हाथ, पैर, सिर जैसे अंग छोटे-बडे पर अन्य अंग सुंदर होना, **(58) हूंड संस्थान:** पूरे शरीर के सभी अंग अशुभ **(59) अशुभ वर्ण** (काला, नीला), **(60) अशुभ गंध** (दुर्गंध), **(61) अशुभ रस** (तीखा, कड़वा), **(62) अशुभ स्पर्श** (खुरदुरा, भारी, ठंडा, सूखा), **(63) अशुभ विहायगति:** ऊँट जैसी चाल, **(64) नरकानुपूर्वी:** मृत्यु के बाद विग्रहगति जाने वाले जीव को नरक में ले जाने वाला **(65) तिर्यंचानुपूर्वी:** मृत्यु के बाद विग्रहगति जाने वाले जीव को तिर्यंच गति में ले जाने वाला **(66) उपघात नाम:** शरीर के ही अंग पीड़ा दें (जैसे गांठ, आदि), **(67) स्थावर नाम:** जिव स्वयं हलन चलन कर ना सके ऐसा, एकेन्द्रिय शरीर मिलना, **(68) सूक्ष्म नाम:** सूक्ष्म शरीर की प्राप्ति, **(69) अपर्याप्त नाम:** जिसमें परिपूर्ण पर्याप्तियाँ ना मिले, **(70) साधारण नाम:** एक शरीर में अनंत जीव हो। **(71) अस्थिर नाम:** जैसे जीभ, त्वचा इत्यादि अस्थिर हो। **(72) अशुभ नाम:** अशोभनीय शरीर (नाभि के नीचे), **(73) दुर्भाग्य नाम:** जिससे जीव अन्यों को अप्रिय बन जाए। **(74) दुस्वर नाम:** खराब व घोघरा कंठ, **(75) अनादेय नाम:** जिससे वचन अमान्य- अनादरणिय हो, **(76) अयश:कीर्ति नाम:** जिससे अपयश व अपकीर्ति फैले।

गोत्रकर्म के उदय से 1 भेद: (77) नीच गोत्र: जाति, बल आदि 8 बोल में हीनता

अंतराय कर्म के उदय से 5 भेद: (78) दानांतराय: दान देने में बाधा, **(79) लाभांतराय:** लाभ लेने मे बाधा, **(80) भोगांतराय:** एकबार भुगतने जैसी वस्तु में बाधा **(81) उपभोगांतराय:** बारबार भुगतने जैसी वस्तु में बाधा, **(82) वीर्यांतराय:** वीर्य शक्ति का योग्य उपयोग करने में बाधा।

पाप का संबंध सभी आठ कर्मों से होता है, इसीलिए उसमे सभी

आठों कर्मों की प्रकृति होती है।

पाप की 82 प्रकृति

ज्ञानावरणीय कर्म	दर्शनावरणीय कर्म	वेदनीय कर्म	मोहनीय कर्म
(5)	(9)	(1)	(26)
मति ज्ञानावरणीय श्रुत ज्ञानावरणीय अवधि ज्ञानावरणीय मन:पर्यव ज्ञानावरणीय केवल ज्ञानावरणीय	चक्षु दर्शनावरणीय अचक्षु दर्शनावरणीय अवधि दर्शनावरणीय केवल दर्शनावरणीय निद्रा , निद्रा निद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला, थीणद्धि निद्रा	अशाता वेदनीय	अनन्तानुबंधी कषाय - 4 अप्रत्याखानी कषाय - 4 प्रत्याखानी कषाय - 4 संज्वलन कषाय - 4 9 **नो-कषाय:** हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुर्गुच्छा स्त्री वेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद मिथ्यात्व मोहनीय (1)

आयुष्य कर्म	नाम कर्म	गोत्र कर्म	अंतराय कर्म
(1)	(34)	(1)	(5)
नरक का	**गति:** नरक, तिर्यंच **जाति:** एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेंद्रिय **संघयण:** ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलकु और सेवार्त्त संघयण **संस्थान:** न्यग्रोध परिमंडल, सादि, वामन, कुंब्ज, हूंड संस्थान **अशुभ:** वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, विहायगति **आनुपूर्वी:** नरक, तिर्यंच **प्रत्येक प्रकृति:** उपघात नाम **स्थावर दशक:** स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भाग्य, दु:स्वर, अनादेय, अयशोकिर्ती	नीच गोत्र	दानांतराय लाभांतराय भोगांतराय उपभोगांतराय वीर्यांतराय

5. आश्रव तत्त्व

आत्मारूपी सरोवर में, इंद्रिय रूपी छिद्र से अव्रत एवं अपच्चकखाण, विषय और कषायों के सेवन द्वारा पुण्य-पाप रूपी कर्मजल का प्रवाह प्रवेश करता है, वह आश्रव कहलाता है। अर्थात् जिससे नये शुभाशुभ कर्म की आय होती है, जैसे हिंसा आदि उपादानात्मक कारणों से कर्म बँधते है, वह आश्रव। उसका स्वरूप वह आश्रव तत्व है।

आश्रव तत्त्व के सामान्य प्रकार के 20 भेद

(1) मिथ्यात्व: नव तत्त्वों में यथार्थ श्रद्धा न होना, सुदेव, सुगुरु, सुधर्म में यथार्थ श्रद्धा न होना, जिनवाणी पर अरुचि और अन्य मतों में रुचि। **(2) अव्रत:** 12 व्रत, 5 महाव्रत या कोई व्रत न लेना। **(3) प्रमाद:** आत्म लक्ष से हटकर की जाने वाली हर प्रवृत्तियाँ, पाँच प्रमाद: (मद्य, विषय, कषाय, निद्रा, विकथा) का सेवन। **(4) कषाय**: जिससे संसार की वृद्धि हो। **(5) अशुभ योग:** मन, वचन, काया के अशुभ योगो में प्रवर्तन। (6 –10 पाँच पापाचार:) **(6) प्राणातिपात**: जीवहिंसा, **(7) मृषावाद:** असत्य - झूठ, **(8) अदत्तादान:** चोरी, **(9) मैथुन:** अब्रह्मका सेवन, **(10) परिग्रह**:आसक्ति(संग्रह-मोह)।(11-15 पाँच इंद्रियों का असंवर:) **(11) श्रोतेन्दिय असंवर**: मनपसंद शब्दों से राग और नापसंद शब्दों पर द्वेष भाव। **(12) चक्षुइन्द्रिय असंवर**: मनपसंद रूप से राग और नापसंद रूप पर द्वेष भाव। **(13) घ्राणेन्द्रिय असंवर**: मनपसंद गंध से राग और नापसंद गंध पर द्वेष भाव। **(14) रसनेन्द्रिय असंवर**: मनपसंद रस से राग और नापसंद रस पर द्वेष भाव। **(15) स्पर्शेन्द्रिय असंवर:** मनपसंद स्पर्श से राग और नापसंद स्पर्श पर द्वेष भाव। इन इंद्रियों द्वारा मनोहर विषयों में राग व अमनोज्ञ में द्वेष। **(16) मन असंवर**: मन का आर्त-रौद्र ध्यान में प्रवृत्त होना। **(17) वचन असंवर:** असत्य, कटु, अपवित्र वाणी बोले। **(18) काय असंवर:** शरीर से विषय, कषाय, 18 पापों में प्रवृत्ति। **(19) भंड: उपकरण** अयत्ना से रखे-लेवे। **(20) शूचि-कुसग्ग करे:** घास की नोंक पर पानी टिके उतनी देर भी प्रमाद करे। (शुचि -सुई, कुसग्ग - घास का अग्रभाग)

विशेष प्रकार से आश्रव तत्त्व के 42 भेद

(1–5) पाँच पापाचार - प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह।
(6 –10) पाँच इंद्रिय असंवर
(11–13) मन, वचन, काय असंवर

(14–17) चार कषाय - क्रोध, मान, माया, लोभ करें

यह 17 एवं निम्न लिखित 25 क्रियायें मिलकर 42 भेद।

25 क्रियाएँ - जो आश्रव के कारण बनती हैं: **(1) काइया क्रिया:** शरीर को अयत्नपूर्वक प्रवर्तावे, **(2) अहिगरणीया:** हथियार बनाना/बेचना **(3) पाउसिया :** जीव/अजीव पर द्वेष, करना **(4) पारितावणीया:** स्वयं या दूसरों को कष्ट देना **(5) पाणाईवाईया:** स्व के या दूसरों के प्राण का नाश करना, **(6) आरंभिया:** किसी हेतु से छकाय का आरंभ करना, **(7) परिग्गहिया:** जीव या अजीवका संग्रह कर मोह करना, **(8) मायावत्तिया:** छल-कपट करना, **(9) अप्रत्याख्यानवत्तिया:** कोई त्याग/प्रतिज्ञा न करना, **(10) मिथ्यादर्शनवत्तिया:** जिनवाणी से विपरीत या कम अधिक श्रद्धा रखना, प्ररूपणा करना **(11) दिट्ठिया:** कुतूहलता से राग-द्वेष से जीव-अजीवको देखने की क्रिया, **(12) पुट्ठिया:** रागवश जीव या अजीवको स्पर्श करना, **(13) पाडुच्चिया:** जीव या अजीव के निमित्त से राग-द्वेष होना, **(14) सामंतोवणिवाईया:** जीव तथा अजीव का संग्रह करे या प्रशंसा सुन आनंद पाए या दूध, दहीं, घी, तेल के बरतन को खुला छोड़ने से होनेवाली जीवहिंसा, **(15) साहत्थिया:** जीवों को आपस में लड़ाना, या अजीवको एक दुसरेसे टकरा कर तोडें **(16) नेसत्थिया:** जीव या अजीवको अयत्ना से फेंकना, शस्त्र बनवाना, सरोवर, कुआँ खुदवाना आदि, **(17) आणवणिया:** जीव या अजीवको बिना अनुमति ग्रहण करना, **(18) वेदारणिया:** जीव या अजीवके कषायवश टुकडे करना, **(19) अनाभोगवत्तिया:** बिना उपयोग या पुंजे बिना वस्तु लेना या रखना, **(20) अणवकंखवत्तिया:** स्व एवं पर के हित की उपेक्षा करना या यहलोक परलोक बिघडे ऐसे कार्य करना। **(21) पेज्जवत्तिया:** रागवश माया व लोभ करना, **(22) दोसवत्तिया:** द्वेषवश क्रोध और मान करना, **(23) प्पउग्ग:** मन, वचन, काय के अशुभ योग, **(24) सामुदानिया:** कई के साथ मिलकर आरंभजन्य कार्य करना, **(25) इरियावहिया क्रिया:** वीतरागी को योग के प्रवर्तनसे लगे वह।

दोनों मिलाकर 17 + 25 = कुल 42 भेद

6. संवर तत्त्व

आत्मारूपी सरोवर में कर्मरूपी जल के प्रवाह को व्रत, प्रत्याख्यान आदि के माध्यम से रोका जाए, वह संवर कहलाता है। अर्थात् आश्रव का निरोध करना ही संवर है। इसका स्वरूप संवर तत्त्व कहलाता है।

संवर तत्त्व के सामान्य 20 भेद

(1) समकित (2) व्रत प्रत्याख्यान (3) अप्रमाद (4) अकषाय (5) शुभ योग (6) जीवदया (7) सत्य वचन (8) दत्तव्रत ग्रहण (9) शील का पालन (10) अपरिग्रह (11) श्रवणेन्द्रिय संवर (12) चक्षुइन्द्रिय संवर (13) घ्राणेन्द्रिय संवर (14) रसनेन्द्रिय संवर (15) स्पर्शेन्द्रिय संवर (16) मन संवर (17) वचन संवर (18) काय संवर (19) भंड-उपकरण को यत्नपूर्वक लेना-रखना (20) शुचि-कुसग्ग न करना।

संवर तत्त्व के विशेष 57 भेद

5 समिति, 3 गुप्ति (अष्ट प्रवचन माता) (8), बाईस परिषह (22), दस यति धर्म (10), बारह भावना (12), पांच चारित्र (5), कुल भेद = 57.

अष्ट प्रवचन माता: समिति: आवश्यक कार्य के लिए यत्नापूर्वक की सम्यक् प्रवृत्ति। **गुप्ति:** 3 योग को अशुभ प्रवृत्ति से रोकना। **(1) ईरिया समिति:** देख कर सावधानीपूर्वक चलना, साडे तीन हाथ प्रमाण जमीन नजरों से देखकर चलना। **(2) भाषा समिति:** सम्यक् प्रकारसे निर्वद्य भाषा बोलना, सत्य एवं शांत वचन, **(3) एषणा समिति:** निर्दोष आहार, वस्त्र, पात्र एवं 14 प्रकार के दान की गवेषणा, **(4) आयाणभंडमत्तनिक्खेवणया समिति :** वस्तुओं को, उपकरण को यत्ना से लेना-रखना, **(5) उच्चार पासवण खेल जल्ल सिंघाण पारिठावणिया समिति:** मलमूत्र आदि परठने की वस्तुओ का सम्यक् त्याग, जतना पूर्वक परठना **(6) मनोगुप्ति:** अशुभ विचारों पर रोक **(7) वचनगुप्ति:** अशुभ वचनों पर रोक, **(8) कायगुप्ति:** अशुभ काया पर रोक।

22 **परिषह:** मोक्षमार्ग में स्थित रहने एवं, कर्मों के क्षय हेतु जो कष्ट समभाव से सहन किए जाते हैं, उसे परिषह कहते है। **(1) क्षुधा:** भूख, **(2) तृष्णा:** प्यास, **(3) शीत:** सर्दी, **(4) उष्ण:** गर्मी, **(5) दंसमसग:** डांस/मच्छर काटनेका, **(6) अचेल:** सफेद, अल्प मूल्यवान पुराने/मलिन और जीर्ण वस्त्र, **(7) अरति:** दु:ख/कंटाला, **(8) स्त्री:** स्त्रीजन्य होनेवाला, **(9) चर्या:** चलने का, **(10) बैठने का:** भयानक स्थान में बैठना पडे, **(11) सेज:** निवास स्थान का कष्ट, **(12) आक्रोशवचन:** कठोर वचन सुनना पडे, **(13) वध:** मार खाना पडे, **(14) याचना:** भिक्षा माँगना, **(15) अलाभ:** किसी चीज - वस्तु की याचना करने पर भी उसे ना पाना, **(16) रोग:** रोग के कारण से होने वाला, **(17) तृणस्पर्श:** सूखे घास के बीछाने के स्पर्श

से होने वाला दुख, **(18) मैल:** गंदे कपडे और गंदा शरीर, **(19) सत्कार/पुरस्कार:** मान सन्मान मिले, **(20) प्रज्ञा:** कोई प्रश्न पूछे तो ज्ञान की अस्पष्टता के कारण उसका समाधान ना दे पाने से हीनता महसूस करना, **(21) अज्ञान:** ज्ञान समझमें ना आये, उसका, **(22) दंसण:** समकित के सूक्ष्म विचारों को सुनकर धर्म में अश्रद्धा करनेका।

दस यतिधर्म - यतिधर्म (श्रमण धर्म): साधु और श्रावक दोनों को चारित्र पालन के लिए जानने और आचरण करने योग्य श्रमण धर्म है। **(1) खंति**: क्षमा (क्रोध विजय) **(2) मुत्ति:** मृदुता/निर्लोभता/लोभ विजय **(3) अज्जवे:** सरलता (माया का विजय) **(4) मदवे:** नम्रता (मान विजय) **(5) लाघवे:** लघुता **(6) सच्चे:** सत्य वचन बोलना **(7) संजमे:** संयम पालन (17 प्रकार), **(8) तवे:** तप- 12 प्रकार के तप करना, कष्ट सहन करना, इच्छा निरोध करना **(9) अकिंचणे:** अकिंचन्य- परिग्रह का त्याग, ममत्व रहित बनना **(10) बंभचेरवासे:** ब्रह्मचर्य का नव वाड सहित पालन।

बारह भावनाएँ - भावना: जिससे आत्मा को भावित करना चाहिए और जिसमें आत्मा के प्रशस्त भाव प्रगट होते हैं। **12 भेद - (1) अनित्य भावना:** संसार के सभी पदार्थ अनित्य, अस्थिर है ऐसा मानना - भरत चक्रवर्ती। **(2) अशरण भावना:** संसार में कोई किसीका शरणभूत नहीं, केवल धर्म ही सच्चा शरण है - अनाथी मुनि। **(3) संसार भावना:** संसार में अनादि काल से जीव भ्रमण करता है और दुख सहता है। संसार में जो इस भव में माँ है वह अगले भव में पत्नि, या पत्नि है वह माँ होती है। पिता - पुत्र या पुत्र - पिता बनता है ऐसी भावना - मृगापुत्र। **(4) एकत्व भावना:** जीव अकेला आया है, अकेला जाएगा, अकेला ही सुख-दुख को भुगतेगा, उसका कोई साथी, कोई संगाथी नहीं। आत्मा अकेली है ऐसी भावना - नमि राजर्षि। **(5) अन्यत्व भावना:** आत्मा शरीर से भिन्न है, कर्म का बंध करके विभिन्न काया को धारण करता है, वैसे ही धन, संपति, स्वजन आदि भी भिन्न है ऐसी भावना - मरुदेवी माता। **(6) अशुचि भावना:** यह शरीर रस, खुन, मांस, चरबी, हड्डी, मज्जा, वीर्य, पीप और आंतों आदि पुद्गलों से बना है। जिस में नौ द्वारों से सदा ही अशुचि बहती रहती है। ऐसा अपवित्र शरीर कभी भी पवित्र नहीं होने वाला ऐसी भावना भाना - सनत चक्रवर्ती। **(7) आश्रव भावना:** कर्मो की आय पांच आश्रव से होती है और जिससे जिव भविष्य में दुखी होता है ऐसा चिंतन

- समुद्रपाल मुनि। **(8) संवर भावना:** व्रत, नियम, पच्चक्खान से आश्रव रोकना, संवर के उपायों का चिंतन - हरिकेशी मुनि। **(9) निर्जरा भावना:** 12 प्रकार के तप से पूर्व में बंधे कर्म के क्षय का विचार - अर्जुनमाली मुनि **(10) लोक भावना:** लोक के स्वरूप का चिंतन करना, जैसे कि इस जीवने पूरे लोक की जन्म-मरण करके स्पर्शना की है - शिवराज ऋषि **(11) बोधि भावना:** पुण्य के योग से मनुष्य भव, आर्यक्षेत्र, निरोगी काया तथा धर्मश्रवण आदि की प्राप्ति हो सकती है, लेकिन सम्यक्त्व, तीन तत्त्व या धर्मसामग्री की प्राप्ति दुर्लभ है - ऋषभदेव के 98 पुत्र। **(12) धर्म भावना:** केवली प्ररूपित धर्म, धर्म के साधन, साधना, ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी रत्नत्रय पाना दुर्लभ है और धर्म के उपकारक अरिहंत आदि भगवान को पाना भी दुर्लभ है - धर्मरूचि अणगार।

पाँच प्रकार के चारित्र: (1) सामायिक (2) छेदोपस्थापनीय (3) परिहार विशुद्ध (4) सूक्ष्मसंपराय (5) यथाख्यात चारित्र।

चारित्र: जो आते हुए कर्मों को रोक ले अथवा आठ कर्मों का नाश करे वह चारित्र है। संयमरूप आचरण को चारित्र कहते है।

(1) सामायिक चारित्र - सम यानि राग-द्वेष रहितता, आय यानि जहाँ प्राप्त होती है। जिससे ज्ञान, दर्शन, चारित्र ये तीनों की प्राप्ति होती है। समत्वपूर्ण अवस्था, जिसमें सावद्य योगो (18 पापों) का त्याग और निर्वद्य योग का सेवन होता है । वह सामायिक चारित्र है। (गुणस्थानक 6-9)

(2) छेदोपस्थापनीय चारित्र - पूर्व पर्याय का त्याग कर, पाँच महाव्रत ग्रहण करना, छोटी दीक्षा से बड़ी दीक्षा देना। सिर्फ पहले व चोवीसवे तीर्थंकर के शासन में सामायिक चारित्र वाले को छेदोपस्थापनीय चारित्र दिया जाता है।

(3) परिहार विशुद्ध चारित्र - जिसमे परिहार तप से कर्म की विशुद्धि। 18 महिनों के लिए जिसे ग्रहण किया जाता है। यह चारित्र पांच भरत–ऐरावत में पहले व अंतिम तीर्थंकर के शासन में होता है। दूसरा और तिसरा चारित्र महाविदेह क्षेत्र में कभी भी नहीं होता।

(4) सुक्ष्म संपराय चारित्र - जिस चारित्र में सुक्ष्म लोभ रूप कषाय उदय में रहता है। श्रेणी में चढ़ते और उपशम श्रेणी से गिरते 10 वे गुणस्थानक पर ये चारित्र होता है।

(5) यथाख्यात चारित्र - पूर्ण वीतराग अवस्था (संपूर्ण राग-द्वेष रहित) अवस्था प्राप्त होती है। इस चारित्र के आचरण से जन्म-जरा-मरण रहित ऐसा मोक्षरूप स्थान प्राप्त होता है। (गुणस्थानक 11-14)

7. निर्जरा तत्त्व

आत्मा के प्रदेश से, बारह प्रकार के तप द्वारा, कुछ मात्रामें कर्म की निर्जरा होना, झरझरीत हो कर दूर होना, उसे निर्जरा कहते है। अथवा पूर्व में बंधे कर्मों का जो क्षय होता है, प्रमुखतः तप के द्वारा, कुछ प्रमाणमें कर्म को झराकर दूर करना, वह निर्जरा कहलाता है -उसके स्वरूप को निर्जरा तत्त्व कहते हैं।

निर्जरा दो प्रकार की होती है**: (1) द्रव्य निर्जरा:** कर्म पुद्गल आत्मा के प्रदेश से अलग हो जाते हैं, उसे द्रव्य निर्जरा कहते हैं। (2) **भाव निर्जरा:** आत्मा के शुद्ध परिणामों से जीन कर्मों की स्थिति स्वयं ही स्वयं से परिपक्व हो जाती है या बारह प्रकार के तप के द्वारा, कर्म परमाणु निष्प्रभ हो जाते हैं और छूट जाते हैं, तब आत्मा में जो परिणाम होते है, वह भाव निर्जरा कहलाती है।

निर्जरा के और भी दो भेद हैं: (1) अकाम निर्जरा: आत्मशुद्धि का लक्ष्य न होने पर, बिना सम्यग्दर्शन की उपस्थिति के, समझ के अभाव में, बाल तपस्वी या एकेन्द्रिय आदि में समकित की अनुपस्थिति में केवल कष्ट सहन करने से जो कर्म निर्जरा होती है, उसे अकाम निर्जरा कहते हैं। (2) **सकाम निर्जरा:** आत्मशुद्धि की भावना से, सम्यग्दर्शन की उपस्थिति में, तप के द्वारा, समझ और समभावपूर्वक कष्ट सहन कर के जो निर्जरा होती है, उसे सकाम निर्जरा कहते हैं।

बारह प्रकार के तप से कर्मों की निर्जरा होती है। तप के मुख्य दो भेद हैं: (1) बाह्य तप और (2) आभ्यंतर तप। इन दोनों के मिलाकर कुल 12 प्रकार के तप होते हैं।

बाह्य तप के लक्षण: (1) जिसमें भूख आदि बाहरी कष्ट होते हैं। (2) जिनका प्रभाव सीधे शरीर पर पड़ता है। (3) जो तप आभ्यंतर शुद्धि का कारण बनते हैं।

आभ्यंतर तप के लक्षण : (1) जिसमें भूख आदि बाह्य कष्ट गौण होते हैं। (2) जिनका प्रभाव सीधे आत्मा पर पड़ता है।

बाह्य तप शरीर की त्वचा के समान हैं और आभ्यंतर तप शरीर की धातुओं (रक्त, मांस आदि) के समान हैं। त्वचा शरीर की रक्षा करती है और धातु शरीर का कार्य संचालन करती है - दोनों परस्पर पूरक हैं। दोनोंका स्वयंका महत्व है। दोनो द्वारा भाव के अनुसार निर्जरा होती है।

छह बाह्य तप

(1) अनशन: तीन या चार आहार का त्याग करना। **(2) उणोदरी:** न्यूनता करना - भोजन, जल, उपकरण, कषाय आदि को कम करना। **(3) वृत्तिसंक्षेप:** द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से वृत्तियों को सीमित करना एवं अभिग्रह, नियम आदि धारण करना। **(4) रसपरित्याग:** विगय, स्वादिष्ट रसों (घी, दूध, तेल, गुड़, शक्कर) का त्याग। **(5)कायक्लेश:** शरीर को तप, लोच आदि से कष्ट देना। **(6) प्रतिसंलीनता:** योग, कषाय, इन्द्रियों की अशुभ प्रवृत्तियों को रोकना।

छह आभ्यंतर तप

(1) प्रायश्चित्त: अपराधों की शुद्धि करना, दोषों को गुरु के समक्ष कपट रहित प्रकट कर आलोचना लेना। **(2) विनय:** आठ कर्मों का जिससे विनाश होता है, वह विनय है। देव, गुरु आदि की भक्ति करना **(3) वैयावच्च:** गुरु, तपस्वी, रोगी, नवदीक्षित को अन्न, जल, वस्त्र, औषध आदि लाके देकर सेवा करना। **(4) स्वाध्याय:** स्वाध्याय यानि- (1) श्रेष्ठ पठन-पाठन का अभ्यास (2) आत्मगुण के स्वरूप का अभ्यास (3) स्वयं का अभ्यास करना कि जीवन ऊँचा बन रहा है की नहीं। **स्वाध्याय के 5 भेद:** (1) पढ़ना-पढ़ाना (2) शंका का गुरु से समाधान (3) जो सीखा है उसे फिरसे बारबार याद करना (4) जो समझ आया है उसका चिंतन (5) धर्म की कथा कहना और उपदेश देना **(5) ध्यान:** किसी एक विषय पर मन को स्थिर करना। चार ध्यानों में से आर्त, रौद्र दो अशुभ को छोड़ना और दो शुभ- धर्म और शुक्ल ध्यानमें एकाग्र होना। **(6) व्युत्सर्ग:** शरीर, संप्रदाय और संसार के ममत्व का त्याग करना।

8. बंध तत्त्व

जब आत्मा के प्रदेशों में कर्म पुद्गल दूध-पानी की तरह या लोहा और अग्नि की तरह लोलिभूत (एकमेक) होकर मिलते हैं, उसे बंध कहते हैं। इस बंध के स्वरूप को बंध तत्त्व कहते हैं।

बंध तत्व के चार भेद होते हैं

(1) प्रकृति बंध: कर्म का स्वभाव व उसका परिणाम। **(2) स्थिति बंध:** कर्म की

स्थिति यानी कितने समय तक कर्म बंधा रहेगा। **(3) अनुभाग बंध:** कर्म के शुभ-अशुभ, तीव्र-मंद रस रूप परिणाम। **(4) प्रदेश बंध:** कर्म पुद्गलों के प्रदेश, कण।

लड्डु के दृष्टांत से चार प्रकार का बंध

(1) प्रकृति बंध: सूंठ आदि डालकर बनाया गया लड्डु वात रोग नाश करता है। जीरा आदि पदार्थ डालकर बनाया हुआ लड्डु पित्त रोगका नाश करता है। उसी तरह जिस द्रव्य के संयोग से जो लड्डु बना है उस द्रव्य के गुण अनुसार वात, पित्त, कफ आदि रोगो का नाश होता है, वह उसका स्वभाव है। उसी प्रकार कर्म का गुण उसके परिणाम तय करता है।

(2) स्थिति बंध: जैसे लड्डु 15 दिन, 1 महीना या अधिक समय तक टिक सकता है।

(3) अनुभाग बंध: जैसे लड्डु मीठा, तीखा, कड़वा, अलग-अलग रसों वाला होता है। एवं कम - ज्यादा रसो वाला होता है।

(4) प्रदेश बंध: जैसे लड्डु थोड़े द्रव्य से या अधिक कणों से या अधिकतर कणों से बना होता है, वैसे ही कर्म भी कम या अधिक कणों वाले होते है।

लड्डु के दृष्टांत से कर्म के उपर चार प्रकार के बंध

(1) प्रकृति बंध: जो कर्म बंधता है वह आत्मा के ज्ञान आदि गुणों को ढँक देगा, यह उसका स्वभाव होता है। इसे प्रकृति बंध कहते हैं।

(2) स्थिति बंध: जो कर्म बंधता है, वह न्यूनतम अंतर्मुहूर्त से लेकर अधिकतम 70 क्रोडाक्रोडी सागरोपम काल तक स्थित रह सकता है। जब किसी कर्म का स्वभाव बँधता है, उसी समय उस कर्म पुद्गल में यह मर्यादा भी निर्मित हो जाती है कि वह स्वभाव निश्चित काल तक आत्मा से अलग नहीं होगा, उस काल को ही स्थिति बँध कहा जाता है।

(3) अनुभाग बँध: किसी कर्म का शुभ, तीव्र या मंद विपाक होता है और किसी कर्म का अशुभ, तीव्र या मंद विपाक होता है। जैसे वेदनीय आदि कर्मों में किसी का अशुभ रस अल्प हो सकता है और किसी का अशुभ रस अधिक हो सकता है - ऐसे रस की तीव्रता-अतीव्रता के भेद को अनुभाग बँध कहते हैं।

(4) प्रदेश बँध: किसी कर्म पुद्गल के कण (प्रदेश) कम होते हैं तो किसी के अधिक होते हैं। इस परिमाण (मात्रा) को प्रदेश बँध कहा जाता है।

9. मोक्ष तत्त्व

समस्त आत्मा के प्रदेशों से, समस्त कर्मों का छूटना, समस्त बँधनों से मुक्त होना, समस्त कार्यों की सिद्धि प्राप्त होना, यही मोक्ष तत्त्व कहलाता है। अथवा आत्मप्रदेश से संपूर्ण रूप से सभी कर्मों का क्षय हो जाना, यही मोक्ष है।

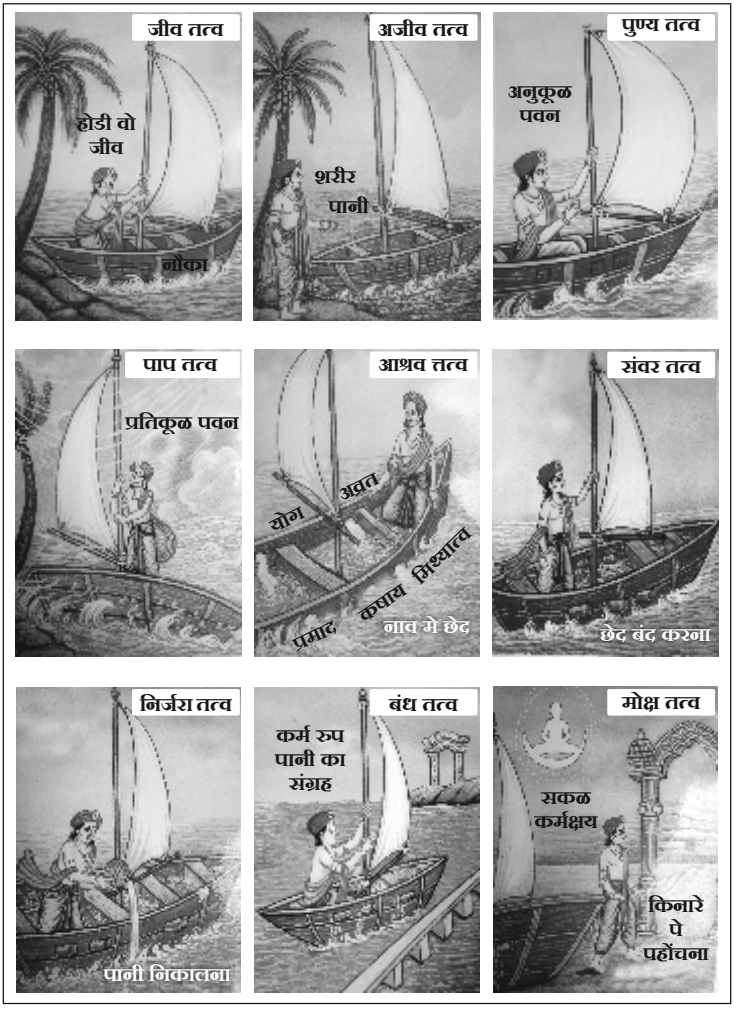

पँद्रह भेद से सिद्ध होते हैं

(1) **तीर्थ सिद्ध:** तीर्थंकर, तीर्थ की स्थापना कर ले उसके बाद जो मोक्ष प्राप्त करते है वे, जैसे गौतमस्वामी आदि गणधर प्रमुख।

(2) अतीर्थ सिद्ध: तीर्थंकर, तीर्थ की स्थापना करे उसके पहले या तीर्थ के विच्छेद बाद मोक्ष प्राप्त करते है वे, जैसे मरुदेवी माता आदि।

(3) तीर्थंकर सिद्ध: जो तीर्थंकर पद को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करते है वे, जैसे ऋषभदेव भगवान आदि अरिहंत भगवान।

(4) अतीर्थंकर सिद्ध: जो तीर्थंकर पद को प्राप्त किए बिना, सामान्य केवली के रूप में मोक्ष को प्राप्त करते है वे।

(5) गृहस्थलिंग सिद्ध: जो गृहस्थ वेश में रहते हुए मोक्ष को प्राप्त करते है वे, जैसे मरुदेवी माता।

(6) अन्यलिंग सिद्ध: जो योगी, संन्यासी, तापस आदि वेश में मोक्ष को प्राप्त करते है वे, जैसे वल्कलचीरी आदि।

(7) स्वलिंग सिद्ध: जो साधु वेश में रहते हुए मोक्ष को प्राप्त करते है वे, जैसे श्री जंबूस्वामी आदि मुनिराज।

(8) स्त्रीलिंग सिद्ध: जो स्त्रीलिंग में मोक्ष को प्राप्त करते हैं वे, जैसे चंदनबाला आदि।

(9) पुरुषलिंग सिद्ध: जो पुरुषलिंग में मोक्ष को प्राप्त करते है वे, जैसे गौतमादिक।

(10) नपुंसकलिंग सिद्ध: जो नपुंसकलिंग में मोक्ष को प्राप्त करते है, जैसे गांगेय अणगार प्रमुख।

केवल समझने के लिए: इस पर कोई प्रश्न-नहीं पूछा जाएगा।

लोक में परमाणु से लेकर अभव्य जीवों से अनंतगुणा अधिक तथा सिद्ध जीवों से अनंत भाग कम प्रदेशों के जो स्कंध (समूह) बनते हैं, वे जीवों के लिए उपयोगी नहीं होते। इन्हें अग्राह्य वर्गणा कहा जाता है। इस में जब एक परमाणु जोड़ा जाता है, तब औदारिक शरीर की जघन्य (अत्याल्प) ग्रहण योग्य वर्गणा बनती है। जैसे-जैसे एक-एक परमाणु और जोड़े जाते हैं, उनसे बनने वाले स्कंधों की अनंत वर्गणाएँ औदारिक ग्रहण योग्य हो जाती हैं। फिर जब उत्तम औदारिक ग्रहण योग्य वर्गणा में एक परमाणु और जोड़ा जाता है, तो वैक्रिय शरीर की जघन्य अग्राह्य वर्गणा की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जैसे-जैसे एक-एक परमाणु जोड़े जाते हैं, उनसे बनने वाले स्कंधों से वैक्रिय शरीर की उत्तम अग्राह्य वर्गणा बनती है। इसमें एक परमाणु और जोड़ने से वैक्रिय शरीर की जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा प्राप्त होती है।

इस प्रकार: (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) आहारक (4) तैजस (5) भाषा (6) श्वासोच्छवास (7) मन (8) कार्मण। कुल आठ प्रकार की अग्राह्य वर्गणाएँ और आठ प्रकार की ग्रहण योग्य वर्गणाएँ होती हैं। और इसके अतिरिक्त अनंत सारी वर्गणाएँ है।

(12) स्वयंबुद्ध सिद्ध: जो गुरु के उपदेश के बिना जातिस्मरण आदि ज्ञान से स्वयं प्रतिबोध पाकर मोक्ष को प्राप्त करते है वे, जैसे कपिल आदि।

(13) बुद्धबोधि सिद्ध: जो गुरु का उपदेश सुनकर, वैराग्य प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त करते है, वे।

(14) एक सिद्ध: एक ही समय में, एक जीव मोक्ष को प्राप्त करें वे।

(15) अनेक सिद्ध: एक ही समय में कई जीव मोक्ष को प्राप्त करें वे (2 से लेकर अधिकतम 108 तक), जैसे ऋषभदेव स्वामी। यह पंद्रह प्रकार सिद्ध के हैं। तीर्थ सिद्ध और अतीर्थ सिद्ध - इन दो भेदों में ही बाकी तेरह भेद समाविष्ट हो जाते हैं, फिर भी विस्तार से समझाने हेतु उन्हें पृथक रूप से वर्णित किया गया है।

चार कारणों से जीव मोक्ष को प्राप्त करता है

सम्यग् ज्ञान , सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र और सम्यग् तप से जीव मोक्ष में जाता है।

मोक्ष के नौ द्वार

सत्त, दव्व, खेत्त, फास, काल, भाग, भाव, चेव ।
अंतर, अप्प बहुत्त ए नौ मोक्ख दाराणी ॥

(1) सत्पदप्ररूपणाद्वार: मोक्षगति पूर्वकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्य में भी रहेगी, इसका अस्तित्व है, यह आकाश-कुसुम की तरह अनस्तित्व(नास्ति) नहीं है।

(2) द्रव्यद्वार: सिद्ध अनंत हैं। अभव्य जीवों से अनंतगुणा अधिक हैं। वनस्पति को छोड़ कर, 23 दंडकों से सिद्ध जीवों की संख्या अनंतगुणा अधिक है।

(3) क्षेत्रद्वार: यह सिद्धशिला के अनुसार है, जो 45 लाख योजन लंबी-चौड़ी है और उसकी त्रिगुणी से अधिक परिधि है। वहाँ से एक योजन ऊपर के अंतिम गाउ के छट्ठे भाग (333 धनुष और 32 अंगुल) की सीमा में सिद्ध रहते हैं।

(4) स्पर्शनाद्वार: सिद्ध क्षेत्र से कुछ अधिक सिद्धों की स्पर्शना होती है।

(5) कालद्वार: एक सिद्ध की अपेक्षा सादि अनंत है और सभी सिद्धों की अपेक्षा वे अनादि अनंत है।

(6) भागद्वार: सिद्ध जीव सभी जीवों के अनंतवे भाग हैं; लोक के असंख्यातवे भाग हैं।

(7) भावद्वार: सिद्धों में क्षायिक भाव होता है। वे केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यकत्व और पारिणामिक भाव के धारी होते हैं, वही जीवत्व है।

(8) अंतरद्वार: एक बार जो सिद्ध हो गए, वे संसार में फिर नहीं आते। सिद्ध क्षेत्र में अनंत सिद्ध हैं, जहाँ एक सिद्ध है, वहाँ अनंत-सिद्ध है और अनंत सिद्ध है वहाँ एक सिद्ध है। इसलिए दो सिद्धों में कोई अंतर नहीं।

(9) अल्पबहुत्वद्वार: सबसे कम नपुंसक सिद्ध, उनसे अधिक संख्या में स्त्री सिद्ध और उनसे भी अधिक संख्या में पुरुष सिद्ध होते हैं। एक समय में 10 नपुंसक, 20 स्त्रियाँ और 108 पुरुष मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

19 बोल का धारक ही मोक्ष प्राप्त करता है

(1) त्रस (2) बादर (3) पर्याप्त (4) संज्ञी (5) मनुष्यगति (6) वज्रऋषभनाराच संघयण (7) भव्य सिद्धिक (8) चरम शरीरी (9) क्षायिक समकित (10) पंडितवीर्य (11) अप्रमादी (12) शुक्लध्यान (13) अवेदी (14) अकषायी (15) यथाख्यातचारित्र (16) परमशुक्ललेशी (17) केवलज्ञान (18) केवलदर्शन, (19) स्नातक।

जघन्य रूप से जिसकी अवगाहना दो हाथ और उत्कृष्ट रूप से जिसकी अवगाहना 500 धनुष तक है; जघन्य रूप से जिसकी आयु 9 वर्ष की और उत्कृष्ट रूप से पूर्वक्रोड वर्ष की है; और जो कर्मभूमि का मनुष्य है, वही मोक्ष में जाता है।

॥ इस प्रकार नव तत्त्व संपूर्ण हुए ॥

सम्यग्दृष्टि जीवों के लिए उपर्युक्त नव तत्त्व जानने योग्य है। जीव और अजीव, ये दो तत्त्व **(ज्ञेय)** मात्र जानने योग्य हैं। पुण्य, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये चार तत्त्व **(उपादेय)** ग्रहण करने योग्य हैं। पाप, आश्रव, और बंध, ये तीन तत्त्व **(हेय)** सर्वथा त्यागने योग्य हैं।

नव तत्त्वों के रूपी-अरूपी भेदों की संख्या तथा हेय, ज्ञेय और उपादेय के अनुसार उनका वर्गीकरण नीचे अनुसार है:

जिसमें वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं, वे रूपी तत्त्व कहलाते हैं। जिसमें ये चारों गुण नहीं होते, वे **अरूपी** तत्त्व कहलाते हैं।

नव तत्त्वों के रूपी-अरूपी भेद

क्रम	तत्व	रूपी भेद	अरूपी भेद	हेय, ज्ञेय, उपादेय
1	जीव तत्त्व	14(संसारी)	सिद्ध	ज्ञेय
2	अजीव तत्त्व	4	10	ज्ञेय
3	पुण्य तत्त्व	42	0	उपादेय, हेय
4	पाप तत्त्व	82	0	हेय
5	आश्रव तत्त्व	42	0	हेय
6	संवर तत्त्व	0	57	उपादेय
7	निर्जरा तत्त्व	0	12	उपादेय
8	बंध तत्त्व	4	0	हेय
9	मोक्ष तत्त्व	0	9	उपादेय

व्यावहारिक जीवन में नव तत्त्वों को जानकर क्या करेंगे?

जीव तत्त्व: 1. यह श्रद्धा करना कि आत्मा है, अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगी। 2. जीव के विभिन्न स्वरूपों को जानकर प्रत्येक को अपने आत्मा के समान मानते हुए किसी को भी दुख, कष्ट या पीड़ा न देना। 3. यह जानकर कि ज्ञान और दर्शन मेरा स्वभाव है, समता धर्म की आराधना करना। 4. जीव के 563 भेद को जानकर समझना कि मेरा आत्मा उनमें परिभ्रमण कर रहा है और उस परिभ्रमण से मुक्त होने का प्रयत्न करेंगे।

अजीव तत्त्व: 1. यह श्रद्धा और समझ रखना कि अजीव पदार्थ जड़ है और जीव से भिन्न है। 2. जड़ वस्तुओं में सुख या शांति देने की कोई प्रकृत्ति नहीं है। 3. अरूपी जड़ पदार्थों का ज्ञान कर भगवान के केवलज्ञान पर दृढ़ श्रद्धा करना। 4. यह श्रद्धा करना कि परिवर्तन पुद्गल का स्वभाव है और इस कारण पुद्गल की आसक्ति को घटाना।

पुण्य तत्त्व: 1. पुण्य के उदय तक ही अच्छे संयोग और अनुकूलताएँ टिकती हैं, इसलिए इच्छित संयोगों को बनाए रखने के लिए आर्तध्यान या रौद्रध्यान न करें। 2. पुण्य बाँधने की वृत्ति से धर्म की आराधना न करें। 3. यह जानकर कि संसार का समस्त प्रवाह पुण्य के उदय से चलता है लेकिन अंततः

पुण्य भी नष्ट हो जाता है, पुण्य को नहीं, पुरुषार्थ को केन्द्र बनाना चाहिए। जीवन में धर्म को प्राथमिकता देना, पुण्य के उदय को नहीं।

पाप तत्त्व: 1. दुख, प्रतिकूलता और अनिष्ट संयोग अपने पापकर्म के उदय से मिलते हैं, इसलिए आर्तध्यान में न जाकर समता भाव बनाए रखना। 2. पाप का भय रखकर आत्मा को हल्का (शुद्ध) बनाने के लिए 18 पापों का त्याग करना। 3. जानना कि दुख का मूल पाप है और पाप का मूल हिंसा है। हिंसा से अशांति बँधती है, इसलिए पाप का स्वरूप जानकर उसका सर्वथा त्याग करना। 4. पुण्य करना सरल है लेकिन पाप छोड़ना कठिन, यह जानकर पाप का त्याग करना और समभाव से दुख का स्वीकार करने योग्य जीवन बनाना।

आश्रव तत्त्व: 1. यह श्रद्धा करना कि मिथ्यात्व आदि भावों से आत्मा में कर्मों का प्रवाह (आगमन) होता है। 2. कर्म बंधन के कारणभूत बनने वाली 25 क्रियाओं को जानकर उनसे बचने के लिए सतर्क रहना। 3. यदि किसी विवशता से आश्रवकारी कार्य करना पडे तो प्रायश्चित्त और प्रतिक्रमण करना।

संवर तत्त्व: 1.अशुभ कर्मों के आगमन को रोकने के लिए संवर के विभिन्न अनुष्ठान को जानकर उसकी आराधना करना। 2. व्रत और नियमों को धारण करने में उत्साह दिखाना। 3.पापभीरुता गुण को विकसित करना, सांसारिक कार्यों की सीमा निर्धारित कर या उन्हें घटाकर, व्रत धारण कर, संवर कर, आते हुए कर्मोंको रोकना। 4. पच्चक्खाण (व्रत संकल्प) द्वारा पाप का त्याग करके संवर की आराधना के लिए दृढ़ श्रद्धावान बनकर श्रावक या साधु धर्म की आराधना करनी चाहिए। 5. यह जानकर कि केवल मनुष्य भव में ही संवर की पूर्ण आराधना हो सकती है, दुर्लभ मानव जीवन को सार्थक बनाने हेतु अप्रमादी बनकर सम्यक् पराक्रम करना।

निर्जरा तत्त्व: 1. तप की समझ प्राप्त कर, अपनी शक्ति के अनुसार तप का आचरण करना। 2. धर्म कार्य में अपनी ऊर्जा (वीर्य) को संचित करके रखना, व्यर्थ न गँवाना। 3. तप त्याग के द्वारा सांसारिक सुखों की इच्छा का त्याग करना चाहिए।

बंध तत्त्व: 1. कर्म बंधन के प्रकारों को जानकर उन्हें रोकने और मंद रस (कम प्रभाव) के लिए पुरुषार्थ करना। 2. जो कर्म बंध गए हैं, वे अपनी स्थिति से अधिक समय तक नहीं टिक सकते, यह समझ प्राप्त कर, अनुकूलता और प्रतिकूलता को समभाव से सहन करने हेतु जागृत बनना। 3. यदि अशुभ कर्म बंध जाएँ तो उनको तुरंत निष्फल होने हेतु पश्चात्ताप करना। 4. क्रोध और मान को जीतने के लिए "कम खाना, गम खाना, नम जाना" सूत्र को अपनाना। माया और लोभ को जीतने के लिए "सरल और संतोषी हृदय में ही धर्म टिकता है" इस सूत्र को अपनाना।

मोक्ष तत्त्व: 1. सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र और सम्यग् तप की ही आराधना का लक्ष्य दृढ़ बनाना। 2. जैन धर्म में दृढ़ श्रद्धा करना। 3. केवल मोक्ष को ही लक्ष्य बनाकर धर्म की आराधना करना। 4. मोक्ष का यथार्थ स्वरूप समझना।

इस प्रकार नौ तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा द्वारा समकित मोहनीय कर्म को तोड़ा जा सकता है, देव, गुरु और धर्म के सच्चे स्वरूप को जाना जा सकता है और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। फिर क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी चार कषायों को उपशम या क्षय करके चारित्र मोहनीय कर्म को तोड़कर यथार्थ मोक्ष मार्ग की आराधना हेतु चारित्र को अंगीकार किया जा सकता है। जिससे मोक्ष की प्राप्ति संभव है।

इसलिए जिस आत्मा में योग्य धर्म आचरण की भावना हो, उसे चाहिए कि: मोक्ष को लक्ष्य बनाकर जीव और जड़ स्वभावी शरीर को भिन्न करने, पुण्य-पाप रूप आश्रव और बँध को रोक कर संवर में स्थिर होकर कर्म निर्जरा की साधना में प्रयत्नशील बने।

अपेक्षित प्रश्न:

1. नौ तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा से क्या लाभ होता है?
2. सम्यग्दर्शन क्या होता है?
3. नौ तत्त्वों को जानकर व्यावहारिक जीवन में आप क्या परिवर्तन करेंगे?
4. जीव को कौन-सा लक्ष्य अपनाना चाहिए?

3. 32 आगम (सूत्रों) का परिचय

सूत्र: आगम: जैन धर्म का मूल आधार 32 आगम हैं। "आगम" - आत्मा की 'गम' (समझ) देते है। इनके माध्यम से जीव, अजीव आदि छह द्रव्यों का यथार्थ ज्ञान होता है।

इन 32 आगमों में से 11अंग सूत्र तीर्थंकर भगवान की प्रत्यक्ष वाणी को गणधरों द्वारा संग्रहित करके गूँथा गया है। इन्हें ही द्वादशांगी कहा जाता है अर्थात् बारह सूत्रों का समूह। वर्तमान में हमारे पास केवल 11 अंगसूत्र उपलब्ध हैं। बारहवाँ सूत्र, जिसे दृष्टिवाद कहते हैं, जो लुप्त (विच्छिन्न) हो चुका है। यह इसलिए लुप्त हुआ, क्योंकि यह सूत्र तीर्थंकर की दो पीढ़ियों (पाट) तक ही टिकता है। बाद में धीरे-धीरे लुप्त होता जाता है। दृष्टिवाद अंगसूत्र में ही 14 पूर्व का ज्ञान समाहित रहता है।

12 उपांग सूत्र आदि अन्य आगम हैं, जो 10 पूर्व या उससे अधिक श्रुतज्ञान के धारक आचार्यों द्वारा रचित होते हैं। यह आगम सूत्र दो प्रमुख वर्गों में विभाजित हैं: (1) आवश्यक सूत्र और (2) आवश्यक व्यतिरिक्त- यह 'आवश्यक व्यतिरिक्त' सूत्रों के दो भेद हैं: (1) कालिक सूत्र (2) उत्कालिक सूत्र।

इस प्रकार, आगम सूत्रों के अंतर्गत आते हैं: आवश्यक सूत्र एवं अन्य 31 आगम जिसमें 11 अंग सूत्र, 12 उपांग सूत्र, 4 मूल सूत्र, 4 छेद सूत्र। इन में: 23 कालिक सूत्र और 8 उत्कालिक सूत्र है।

महाविदेह क्षेत्र की दृष्टि से 12 अंग सूत्र ध्रुव (स्थायी) आगम हैं। अन्य सूत्र चल माने जाते हैं। याने की हमेंशा ही रहे, ऐसा नहीं है।

आगमों की प्रमुख परिभाषाएँ:

कालिक सूत्र: वे सूत्र जिसका स्वाध्याय रात्रि के पहले और चौथे प्रहर तथा दिन के पहले और चौथे प्रहर, ऐसे चार प्रहर असज्झाय समयको छोड़कर किया जाता है, उन्हें कालिक सूत्र कहा जाता है।

उत्कालिक सूत्र: वे सूत्र जिसका स्वाध्याय आठों प्रहर असज्झाय समय टालकर किया जा सकता है, वे उत्कालिक सूत्र कहलाते हैं।

अंगसूत्र: वे सभी श्रुतज्ञान के सूत्र जो 14 पूर्वी गणधरों द्वारा रचित हैं, जो मूल और प्रधान हैं। इनका अर्थ और क्रम सर्व क्षेत्र और सर्व काल में समान रहता है, वे अंग सूत्र हैं। इनकी कुल संख्या 12, परंतु वर्तमान में केवल 11 अंग सूत्र उपलब्ध हैं।

उपांगसूत्र: जो ज. 10 पूर्व उ. 14 पूर्व के ज्ञानि स्थविरों द्वारा रचित होते हैं और अंगसूत्र में बताए गए अर्थों का स्पष्ट बोध कराते हैं, उन्हें उपांगसूत्र कहते हैं।

जिसकी संख्या वर्तमान में 12 है।

मूल सूत्र: जो साधु के जीवन में मूलभूत मार्गदर्शन प्रदान करते हैं और जिनका अध्ययन साधु के लिए सर्वप्रथम आवश्यक होता है, उन्हें मूलसूत्र कहते हैं। जिसकी संख्या 4 है।

छेद सूत्र: जो सूत्र नौवे पूर्व से अलग किए गए हैं और छेदोपस्थापनीय चारित्र के अनुरूप जिनमें प्रायश्चित्त के निर्देश दिए गए हैं, उन्हें छेद सूत्र कहा जाता है। जिसकी संख्या 4 है।

आवश्यक सूत्र: जो चतुर्विध संघ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) के लिए प्रतिदिन अनिवार्य रूप से करने योग्य हैं, वह आवश्यक सूत्र हैं।

इन 32 सूत्रों का स्वाध्याय कब करना चाहिए, इसका विवरण इसी पुस्तक के तीसरे श्रमण सूत्र के प्रश्नोत्तर भाग में दिया गया है। आवश्यक सूत्र कभी भी बोला जा सकता हैं। यहाँ 32 सूत्रों के नाम, उनका कालिक/उत्कालिक होना आदि की संक्षिप्त जानकारी दी गई है।

11 अंग सूत्रों के रचयिता श्री सुधर्मा स्वामी हैं, और ये सभी कालिक सूत्र हैं।

जैन आगम सूत्रों का वर्गीकरण

11 अंग सूत्र

क्रम	सूत्र का नाम	कौन से विषयों का वर्णन है?
1	श्री आचारांग सूत्र	साधु के आचार तथा भगवान महावीर के जीवन चरित्र का वर्णन
2	श्री सूयगडांग सूत्र	353 पाखंडी धर्मों के खंडन का वर्णन और छह दर्शन(सिद्धांत) का रहस्य
3	श्री ठाणांग सूत्र	1 बोल, 2 बोल आदि क्रम से 10 बोल तक विभाजित विविध विषयों का वर्णन
4	श्री समवायांग सूत्र	1, 2, 3 से क्रोड बोलों का वर्णन तथा 63 शलाकापुरुषों का वर्णन, द्वादशांगी का वर्णन
5	श्री भगवती सूत्र	36,000 प्रश्नोत्तर हैं। गौशालक, जमाली, जयंतिश्राविका आदि का वर्णन। उपलब्ध आगम में सबसे बडा आगम है।
6	श्री ज्ञाताधर्मकथा सूत्र	मेघकुमार, थावच्चापुत्र, मल्लिनाथ भगवान, द्रौपदी, धर्मरूचिअणगार आदि धर्मकथाओं का वर्णन
7	श्री उपासकदशांग सूत्र	आनंद, कामदेव आदि 10 श्रावकों का जीवन वर्णन
8	श्री अंतगड सूत्र	गजसुकुमाल, अर्जुनमाली, श्रेणिक की रानीया आदि तथा विभिन्न तप का वर्णन
9	श्री अनुत्तरोववाई सूत्र	श्रेणिक के 23 पुत्रों, कांकदि के धन्ना आदि अनुत्तर विमान में उत्पन्न होनेवाले 33 जीवों का वर्णन

10	श्री प्रश्नव्याकरण सूत्र	पाँच आश्रव और पाँच संवर का वर्णन
11	श्री विपाक सूत्र	पुण्य और पाप के विपाक (फल) सुख-दुःखरुप है, यह समझाती सुबाहुकुमार, कालसौरिक कसाई आदि की कहाँनिया है।

१2 उपांगसूत्र

12	श्री उववाई सूत्र	उत्कालिक	12 तप और 4 ध्यान इत्यादि विषय का वर्णन है।
13	श्रीरायपसेणीय सूत्र	उत्कालिक	परदेशी राजा और केशीकुमार श्रमण का संवाद। सूर्याभदेव, परदेशी राजा और द्रढ प्रतिज्ञ केवली (एक जीव का) अधिकार है।
14	श्रीजीवाभिगम सूत्र	उत्कालिक	जीव, अजीव के भेद, प्रभेद, रूपी और अरुपी जीवों का वर्णन है।
15	श्री प्रज्ञापना सूत्र	उत्कालिक	जीव, अजीव का विशेष निर्देश; 24 दंडक के जीवों की स्थिति, विरह, गतागत आदि का विवेचन है।
16	श्री जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र	कालिक	जंबूद्वीप, छह आरे, भरत चक्रवर्ती आदि का वर्णन है।
17	श्री चंद्र प्रज्ञप्ति सूत्र	कालिक	चंद्र विमान, नक्षत्र, राहु आदि का ज्योतिषीय वर्णन
18	श्री सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र	उत्कालिक	समपृथ्वी से सूर्य आदि विमान कितनी उंचाई पर है, सूर्यविमान, पर्वराहु, मंडल क्षेत्र आदि का वर्णन
19	श्री निरयावलिका सूत्र	कालिक	कुणिक राजा के अपने भाई हल, विहल के साथ तथा चेडा राजा के साथ रथमुसल कंटक संग्राम का तथा युद्ध के परिणाम से जीव नरक और तिर्यंच गति में उत्पन्न होते है, उसका वर्णन
20	श्री कप्पवडंसिया सूत्र	कालिक	कालकुमार आदि 10 भाईओं के 10 बेटे और उनके तप, संयम का वर्णन
21	श्री पुप्फिया सूत्र	कालिक	महावीर के दर्शन हेतु पधारे चंद्र-सूर्य देव, सोमील और पारसनाथ संवाद तथा बहुपुत्रीकादेवी आदि का वर्णन
22	श्री पुष्फचूलिया सूत्र	कालिक	भगवान पार्श्वनाथ के शासन की 10 साध्वी बीना आलोचना किये काल करके देवी के रूप में उत्पन्न हुई उसका वर्णन
23	श्री वह्निदशा सूत्र	कालिक	22वें तीर्थंकर के शासन में हुए नव वे बलदेव बलभद्र के 12 पुत्रों का वर्णन निषधकुमार आदि 12 भाई नेमनाथ भगवान के पास दीक्षा ग्रहण करके एकावतारी बने उसका वर्णन

4 मूल सूत्र

24	श्री दशवैकालिक सूत्र	उत्कालिक	उसके चोथे अध्ययन के पाठ से बडी दीक्षा दी जाती है। साधु के आचार, भाषा, विनय आदि का वर्णन

25	श्री उत्तराध्ययन सूत्र	कालिक	भगवान महावीर की अंतिम देशना है। नमिराजर्षि, हरिकेशी मुनि, अनाथी मुनि आदि की कथाएँ तथा समिति, गुप्ति, सम्यक् पराक्रम के
26	श्री नंदी सूत्र	उत्कालिक	बोल, 1 से 33 बोल वगैरे का वर्णन है। पाँच ज्ञान का विस्तार, कालिक व उत्कालिक सूत्रों के नाम वगैरे का उल्लेख
27	श्री अनुयोगद्वार सूत्र	उत्कालिक	चार अनुयोग का विवरण

४ छेद सूत्र (सभी कालिक)

28	श्री बृहत्कल्प सूत्र	साधु-साध्वी के आचरण, विधि, कल्प, निषेध कल्प का वर्णन
29	श्री व्यवहार सूत्र	भगवान की आज्ञा में विशेषरूप से कोई दोष लगे हो तो उसका शुद्धिकरण करने की विधि
30	श्री निशीथ सूत्र	साधु-साध्वी के प्रायश्चित्त संबंधित वर्णन
31	श्री दशाश्रुतस्कंध सूत्र	असमाधि स्थान, सबल दोष, आशातना, आचार्य की संपदा,पडिमा आदि का वर्णन
32	श्री आवश्यक सूत्र	नोकालिक नोउत्कालिक सामायिक आदि 6 अध्ययन (आवश्यक)

आवश्यक सूत्र चतुर्विध संघ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) के लिए नित्य करना आवश्यक है। यह सूत्र सभी प्रकार के अस्वाध्याय (असज्झाय) को पार कर चुका है अर्थात् इस पर कोई भी असज्झाय (स्वाध्याय-वर्जित समय) लागू नहीं होती। व्यवहार में इसे प्रतिक्रमण सूत्र के नाम से जाना जाता है।

असज्झाय किसे नहीं लगती?

असज्झाय केवल ऊपर बताए गए श्री आवश्यक सूत्र को छोड़कर, बाकी 31 आगम सूत्रों के **मूल पाठ** पर लागू होती है, इनके अर्थ पर नहीं। इन 32 आगम सूत्रों के अलावा अन्य कोई भी ग्रंथ, साहित्य, कविताएँ, पाठ, श्लोक, या किसी भी भाषा (जैसे, गुजराती, हिंदी आदि) में किए गए अनुवादों पर **कोई असज्झाय लागू नहीं होती।**

(असज्झाय का विशेष विवरण जानने हेतु देखें, श्रृंखला 8 में '32 असज्झायों की सूची')

4. कथा विभाग

1. मुनि मेघकुमार

(श्री ज्ञाताधर्म कथा सूत्र)

मगध नामक विशाल राज्य की राजधानी राजगृही नगरी के पराक्रमी और धर्मनिष्ठ राजा श्रेणिक थे। उनकी धर्मपरायण और सुशील सबसे छोटी रानी का नाम था धारिणी। बुद्धिशाली और धर्मवीर अभयकुमार महामंत्री का पद सुशोभित कर रहे थे।

मेघकुमार, धारिणी रानी और राजा श्रेणिक के सबसे छोटे पुत्र थे। वे सबके लाड़ले और अत्यंत प्रिय थे। जब वे माता के गर्भ में आए, उस समय धारिणी रानी को मेघ (बादल) का आनंद लेने की इच्छा हुई, इसलिए उनका नाम 'मेघकुमार' रखा गया।

योग्य विद्या का अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात्, युवावस्था में उनका विवाह आठ सुंदर एवं गुणवान कन्याओं के साथ हुआ। वे उनके साथ स्वर्ग के समान सुख भोगते हुए आनंद-प्रमोद में जीवन व्यतीत करने लगे।

एक बार महावीर प्रभु विचरण करते-करते राजगृही नगरी के गुणशीलक उद्यान में पधारें। उनकी देशना को सुनने के लिए उत्साहित नगरजन और मेघकुमार भी पहुँचे। प्रभु ने "श्रुतधर्म और चारित्रधर्म का स्वरूप बताया। किस प्रकार से जीव कर्म से बँधता है? किस प्रकार कर्म से मुक्त होता है? और किस तरह जीव सुख-दुख को प्राप्त करता है?" ऐसा धीर, गंभीर वाणी में मंगलमय उपदेश दिया। उनकी अमृतमय वाणी से श्रोता और मेघकुमार भावविभोर हो गए। मेघकुमार में वैराग्य जागृत हुआ और उसी क्षण उन्होंने दीक्षा लेने का निर्णय लिया। उन्होंने प्रभु के पास जाकर अपने अंतर की इच्छा प्रकट की। प्रभु ने मेघकुमार से कहा: "हे मेघ! शुभ कार्य में विलंब मत करो।"

मेघकुमार राजमहल लौटे और अपने माता-पिता से दीक्षा लेने की अनुमति माँगी। धारिणी माता ने, जो अपने इकलौते पुत्र को अत्यंत स्नेह करती थीं, मेघ से संसार में रहने की बहुत विनंती की। माता-पिता दोनों ने मिलकर मेघकुमार को बहुत समझाया, मुनि जीवन की कठिनाइयों को बताया परंतु मेघ अपनी भावना में दृढ़

रहे। अंततः, उनकी दृढ़ता और वैराग्यभावना के समक्ष झुककर माता-पिता ने मेघकुमार का एक दिन के लिए राज्याभिषेक करवा दिया और फिर भारी हृदय से दीक्षा लेने की अनुमति दी। उसी दिन उनका दीक्षा महोत्सव अत्यंत उत्साह और ठाठ-बाट के साथ संपन्न किया गया।

महावीर प्रभु ने मेघकुमार को स्वयं दीक्षा प्रदान की और मुनिधर्म की मर्यादाएँ समझाईं। उन्होंने कहा: "मेघ! अब से तुझे नीचे देखकर चलना होगा, निर्जीव भूमि पर खड़े रहना होगा, भूमि देखकर बैठना होगा, शरीर की प्रमार्जना कर शयन करना होगा, निर्दोष आहार करना होगा, हितकारी-मितकारी और मधुर वाणी बोलनी होगी। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों की रक्षा के लिए सदा सजग रहना, प्रमाद नहीं करना।" इस प्रकार मेघकुमार अब महावीर प्रभु के शिष्य और संयमजीवन के यात्री बन गए।

दीक्षा के बाद की यह उनकी पहली ही रात्रि थी। मुलायम, आरामदायक बिस्तरों और रजाइयों को छोड़कर आज उन्हें भूमि पर संस्तारक (बिछाना) बिछाकर शयन करना था। वे सबसे छोटे थे, इसलिए उनका शयन-स्थान द्वार के पास बना।

रात्रि का समय हुआ। अन्य मुनिजन स्वाध्याय, परियट्टना, चिंतन तथा लघुशंका आदि क्रियाओं हेतु द्वार के पास से अंदर-बाहर आ-जा रहे थे। उन मुनियों में से किसी का हाथ उन्हें छू जाता, किसी का पैर उनके सिर से टकराता, किसी का पैर पेट से लग जाता, किसी के पैरों की धूल उन पर पड़ती। इन सभी कारणों से उन्हें पूरी रात नींद नहीं आई।

पूरी रात जागरण के पश्चात् उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ, "मैं श्रेणिक राजा का पुत्र था, तब यही साधुजन मेरा कितना सत्कार करते थे! और आज मेरा यह कैसा घोर अपमान हो रहा है? मानो मैं कोई पत्थर हूँ, सब मुझे ठोकर मारते जा रहे हैं। पैरों की धूल से मेरी बिछोना गंदा हो रहा है! राजकुमार होकर भी आज भूमि-शयन कर रहा हूँ, यह तो सहनीय है, परंतु यह अपमान, यह तिरस्कार, यह विटंबना, मैं इसे सहन नहीं कर पाउँगा! सुबह होते ही प्रभु से कह दूँगा: "प्रभु! मैं इस संयमी जीवन से तंग आ गया हूँ। मैं फिर से गृहस्थ बनना चाहता हूँ।" आर्तध्यान और पीड़ा से ग्रस्त होकर, वह रात्रि मेघमुनि ने मानो नरक की यातना की भाँति व्यतीत की।

प्रभात होते ही मेघमुनि प्रभु के पास पहुँचे, वंदन-नमस्कार किया। प्रभु बोले: "हे मेघ! मैं जानता हूँ, तुझे पूरी रात मुनियों के आवागमन के कारण नींद नहीं आई और इसी से तेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ, जब मैं श्रेणिक राजा का पुत्र था, तब ये ही साधुजन मेरा कितना सत्कार करते थे! और आज मेरा यह कैसा घोर अपमान हो रहा है? ऐसे अनेक विचारों से तू इतना व्याकुल हो गया कि तूने संयम छोड़ संसार में लौटने का निर्णय कर लिया! और अब मेरी आज्ञा लेने आया है। सही कहा न, मेघ?" मेघमुनि ने कहा: "हाँ प्रभु! यह सब सत्य है।"

प्रभु ने कहा: "आज से तीसरे भव में तू वैताढ्य पर्वत की तलहटी में 'सुमेरुप्रभ' नामक एक विशालकाय हाथी था। तू एक हज़ार हाथियों का नायक – यूथपति था। जिस जंगल में तेरा वास था, वहाँ एक बार भीषण दावानल लगा। तेरे साथी हाथी और अन्य प्राणी जान बचाकर इधर-उधर भागने लगे। तू आग की लपटों में घिर गया। असहनीय जलन और पानी की तीव्र प्यास से व्याकुल होकर तू एक सरोवर में बिना कुछ सोचे कूद पड़ा। लेकिन तू उसके कीचड़ में फँस गया। जैसे-जैसे बाहर निकलने का प्रयास करता, वैसे-वैसे और गहराई में धँसता गया। उसी अवस्था में तेरा एक पुराना शत्रु हाथी आया और उसने अपने दंत-शूल से प्रहार कर तुझे घायल कर दिया। तू भीषण पीड़ा और कष्ट को सात दिनों तक सहता रहा। अंततः आर्तध्यान में तेरी मृत्यु हुई।"

मृत्यु के बाद तू विंध्याचल के पास एक वन में 'मेरुप्रभ' नामक हाथी बना। वहाँ भी तू 700 हाथियों का युथपति बना। उस वन में भी एक बार दावानल भड़का। जब तुने अग्नि देखी, तो तेरे मन में यह विचार आया कि ऐसी अग्नि तू पहले भी देख चुका है। उसी समय तुझे जातिस्मरण (पूर्वभव का स्मरण) ज्ञान हुआ।

भविष्य में ऐसी अग्नि से बचने हेतु, तूने अपने साथियों के सहयोग से जंगल के वृक्षों को उखाड़कर दूर फेंकते हुए एक विस्तृत सुरक्षित मंडल, (आश्रय स्थल) मैदान बनाया।

गर्मी के मौसम में एक बार फिर जंगल में वृक्षों के आपसी घर्षण से दावानल भड़क उठा। सभी वन्य प्राणी भयभीत हो उठें। तब वे सब तेरे द्वारा बनाए गए मंडल में शरण लेने के लिए आ गए। वे शत्रुता भूलकर एक साथ बैठ गए। वह मंडल प्राणियों से भर गया और तू भी वहाँ शरीर समेटकर एक स्थान पर खड़ा रहा। थोड़ी

देर बाद जब तूने शरीर में खुजली अनुभव की, तो तूने एक पैर ऊपर उठाया और जब वह पैर नीचे रखने लगा, तभी देखा कि एक खरगोश नीचे बैठा हुआ था। तूने सोचा, "यदि मैंने पैर नीचे रखा, तो यह बेचारा कुचल कर मर जाएगा।" ऐसी जीव अनुकंपा और समता (सभी जीव छोटे-बड़े समान हैं) के उच्च भाव से तूने पैर नीचे नहीं रखा। इस जीवदया और करुणा के कारण तूने मनुष्य के भव का आयुष्य बाँधा। ढाई दिन बाद, जब वह दावानल शांत हुआ, तब सभी प्राणी एक-एक कर अपने स्थान को लौटने लगे। वह खरगोश भी वहाँ से चला गया। ढाई दिन तक भूख, प्यास और थकावट, लगातार तीन पैरों पर खड़ा होने से तू अत्यंत निर्बल और शक्तिहीन हो गया था। तूने चलने का प्रयास किया, परंतु वहीं भूमि पर गिर पड़ा। तू भूख, प्यास, बुखार और पीड़ा से ग्रसित रहा। तेरे शरीर को अत्यंत वेदना हो रही थी, परंतु मन में पूर्ण शांति थी। एक प्राणी पर दया करके उसे अभयदान दिया, उस करुणा से तेरे आत्मा में गहरा संतोष और आनंद था। तीन दिन के अंत में तूने देह का त्याग किया। वहाँ से मृत्यु को पा कर तू मेघकुमार बना।

हे मेघ! तिर्यंच भव में जीवदया का पालन करने से तुझे मानव जन्म मिला और युवावस्था में ही तुझ में वैराग्य उत्पन्न हुआ। घर, संसार और राज्यसुख का त्याग कर तू साधु बना। आज की रात में तुझे जो कष्ट मिला, जो दुःख हुआ, उसकी तुलना पिछले भव में सहन किए गए कष्टों से कर! साधुओं के चरणों की धूल, उनके पैरों या हाथों का स्पर्श क्या इतना कठोर था कि तू एक रात भी सहन नहीं कर सका? याद कर, मेघ! उस स्मृति को संस्कारित कर।"

श्री महावीर प्रभु के मुख से अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत सुनकर मेघमुनि को जातिस्मरणज्ञान प्राप्त हुआ। उनके अंतरचक्षु द्वारा पूर्वभव की घटनाएँ उन्हें सम्यक् रूप से ज्ञात हुईं। मेघमुनि का मुख आनंद के आँसुओं से भीग गया। उन्होंने प्रभु को वंदन-नमस्कार कर कहा: "हे प्रभु! आज से मेरी इन दोनों आँखों के अलावा मेरा पूरा शरीर साधुओं की सेवा के लिए समर्पित है।" पूर्व में किए गए कर्मों का नाश करने के लिए उन्होंने विविध प्रकार की उग्र तपश्चर्याएँ कीं। साथ ही 11 अंगसूत्रों का अध्ययन भी किया।

जीवन के अंतिम समय में वे विपुलगिरि पर्वत पर गए और एक माह का संथारा धारण किया। समभाव में स्थिर रहकर उन्होंने कालधर्म को प्राप्त किया। फिर वे विजय नामक प्रथम अनुत्तर विमान में देव रूप में जन्मे। वहाँ का आयुष्य पूर्ण

करके वे महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध होंगे और मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

जीवदया और निष्काम सेवा मनुष्य को कैसे अमर बना देती है!
धन्य हैं करुणाप्रेमी, सेवाभावी, तपस्वी मेघकुमार!
वंदना हो जगत के तारनहार तीर्थंकर प्रभु महावीर को!

अपेक्षित प्रश्न:

(1) मेघकुमार संथारा धारण करने के लिए कौन से पर्वत पर गए? (2) मेघकुमार के जन्म के समय उनकी माता को क्या इच्छा हुई थी? (3) सुमेरुप्रभ कितने हाथियों के नायक (युथपति) थे? (4) दीक्षा की प्रथम रात्रि में मेघमुनि ने कौन कौन से परिषह सहे? (5) महावीर प्रभु ने मेघकुमार को दीक्षा प्रदान कर पहला उपदेश क्या दिया? (6) मेघमुनि के पूर्व के तीसरे भव का वर्णन किजीए? (7) मेघमुनि के पूर्व के दुसरे भव का वर्णन किजीए? (8) प्रभु के कौन से बोध को सुनकर मेघकुमार को दीक्षा की भावना जगी? (9) मेघकुमार के माता, पिता और भाई का नाम क्या था? (10) पूर्व जन्म का वृत्तांत जानने के बाद मेघमुनि ने क्या किया?

2. मृगापुत्र दारक

(श्री दुख विपाक सूत्र)

मृग नगर के राजा विजय की रानी मृगावती की कुक्षि से मृगापुत्र दारक का जन्म हुआ था। वह जन्म से ही अंधा, बहरा, गूंगा और अपाहिज था। उसके शरीर में अनेक प्रकार के रोग थे। उसके शरीर में न हाथ थे, न पैर; न कान, न आंख, और न ही नाक थी। केवल अंगों की आकृति मात्र थी। रानी मृगावती उस पुत्र को गुप्त रूप से एक भूमिगत तहखाने (भोंयरा) में रखकर उसका पालन-पोषण करती थी।

एक बार उस नगर में श्रमण भगवान महावीर पधारें। राजा विजय और नगर के अन्य जन भगवान के वंदन करने और देशना (उपदेश) सुनने गए। उसी नगर में एक जन्मांध पुरुष भी रहता था। उसने जब भगवान के आगमन का समाचार सुना, तो वह भी वंदन के लिए गया। उसे देखकर गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा: "क्या इस नगर में इस जैसे और कोई जन्मांध पुरुष हैं?" भगवान ने कहा: "हाँ गौतम, इसी नगर के राजा का पुत्र भी जन्मांध आदि है।" भगवान की आज्ञा लेकर गौतम स्वामी उस पुत्र को देखने नगर में जाते हैं।

गौतम गणधर को अपने महल में आया देखकर रानी मृगावती वंदन-

नमस्कार कर उनसे आगमन का कारण पूछती हैं। गौतम गणधर ने कहा: "मैं आपके पुत्र को देखने आया हूँ।" तब रानी मृगावती अपने चारों सुंदर पुत्रों को सुसज्जित करके गौतम स्वामी के पास ले आती हैं। गौतम स्वामी कहते हैं: "मुझे इन पुत्रों को नहीं देखना, बल्कि आपके उस बड़े पुत्र को देखना है जो जन्मांध और गूंगा आदि है।" उनकी बात सुनकर रानी मृगावती आश्चर्यचकित होकर पूछती हैं: "कौन ऐसा ज्ञानी और तपस्वी है, जिसने मेरे इस छिपे हुए रहस्य को जान लिया?" गौतम स्वामी ने कहा: "मेरे धर्मगुरु, धर्माचार्य, श्रमण भगवान महावीर स्वामी परमज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं। वे भूत, वर्तमान और भविष्य की समस्त बातों को पूर्ण रूप से जानते हैं। उन्हीं के श्रीमुख से आपके इस पुत्र की बात सुनकर मैं उसे देखने आया हूँ।"

इसी बीच मृगापुत्र के भोजन का समय हो गया था। रानी मृगावती ने गौतम गणधर को वहीं ठहराया और रसोई से भोजन सामग्री से भरी हुई एक लकड़ी की गाड़ी लेकर आई। उन्होंने गौतम स्वामी से कहा: "कृपया मेरे पीछे पधारीए।" भोंयरे के पास पहुँचकर रानी ने चार परतों वाले कपड़े से अपने मुख को ढक लिया और गौतम स्वामी से भी कहा कि वे अपने मुख को मुखपत्ति से ढक लें। इसके बाद रानी ने भोंयरे (भूमिगत कक्ष) का द्वार खोला। उसमें से ऐसी दुर्गंध बाहर आने लगी जो मरे और सड़े हुए साँप, गाय आदि पशुओं की दुर्गंध से भी अधिक भयंकर, असहनीय, अशांतिदायक और अप्रिय थी। मृगावती के पीछे-पीछे गौतम स्वामी ने भी भोंयरे में प्रवेश किया और मृगापुत्र को देखा।

मृगा रानी द्वारा लाया गया आहार उस भूखे-प्यासे मृगापुत्र ने खाया। जैसे ही वह आहार उसके पेट में गया, वह खून और पस में परिवर्तित हो गया और उसे उल्टी हो गई। उल्टी किया हुआ वही आहार मृगापुत्र फिर से खाने लगा। गणधर गौतम स्वामी यह दृष्य देखकर गहरी सोच में पड़ गए, "अहो! यह बालक अपने पूर्वभव के घोर पापबंधन के कारण मनुष्य जन्म पाकर भी नर्क के समान दुख भुगत रहा है।"

गौतम स्वामी राजमहल से लौटकर भगवान महावीर के पास पहुँचे और प्रश्न किया: "पूर्वभव के कौन से कर्म के कारण यह मृगापुत्र नर्क के समान दुख भुगत रहा है?" भगवान ने उसका पूर्वभव का वृत्तांत सुनाया:

"इस भरतक्षेत्र में एक नगर था, शतद्वार। उसका राजा था धनपति। इस नगर के

दक्षिण-पूर्व में नदी और पर्वत के बीच स्थित एक क्षेत्र था, विजयवर्धमान। उस नगर के अधीन 500 गाँव आते थे। उसका अधिपति (राजप्रतिनिधि) था एक राठौड़, नाम था इक्काई। वह अत्यंत अधार्मिक, क्रूर और पापाचारी व्यक्ति था। उसने अपने अधीनस्थ 500 गाँवों पर अत्यधिक कर (टैक्स) लागू किया था। उस कर को वसूलने के लिए वह जनता को बहुत पीड़ा देता था। लोगों पर झूठे आरोप लगाकर उन्हें मारता-पीटता, दंड देता, यहाँ तक कि हत्या भी कर देता। लोगों का धन लूट लेता या चोरों से लूटवाता। तीर्थयात्रियों को मारता और लूंटता। इस प्रकार उसने इस जीवन में भारी पाप संचित किए। इन पापों के परिणामस्वरूप उसके शरीर में 16 भयंकर रोग उत्पन्न हो गए। कई उपचार कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। मरणोपरांत वह प्रथम नरक में गया। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर अब वह मृगापुत्र के रूप में मनुष्य योनि में जन्म पाकर नरक जैसी पीड़ा भुगत रहा है।"

जिस दिन मृगापुत्र का जीव रानी के गर्भ में आया, उसी दिन से रानी पति को अप्रिय लगने लगी। राजा अब रानी की ओर देखना भी पसंद नहीं करते थे। गर्भ के कारण रानी की शारीरिक पीड़ा भी बढ़ती गई। रानी यह समझ चुकी थी कि पति की अप्रसन्नता और अपनी पीड़ा का कारण यही गर्भ है। रानी ने गर्भ गिराने के भी कई प्रयास किए, फिर भी वह असफल रही। जब मृगापुत्र दारक गर्भ में था, तब से उसकी आठ नसें शरीर के अंदर रक्त बहाती थी और आठ नसें शरीर के बाहर से पस (परु) बहाती थी। चार नसें कान के छिद्रों में बहती थी, उनमें से दो पस की और दो रक्त की थी। इसी प्रकार चार नसें आँखों के छिद्रों बहती थी। इस प्रकार कुल 16 नसें प्रवाहित हो रही थी।

जब से वह दारक गर्भ में था, तब से उसे भस्मक नामक रोग हुआ था, जिस के कारण जो भी आहार करता, वह तुरंत ही नष्ट होकर रक्त और पस में परिवर्तित हो जाता। इसके बाद वही बालक उसी रक्त और पस का सेवन करता। नौ माह पूर्ण होने पर मृगापुत्र का जन्म हुआ, परंतु वह केवल इंद्रियों के आकार रूप में था। जब वह जन्मा, जो कि एक जन्मांध बालक था। रानी ने तुरंत दासी को आज्ञा दी कि वह उसे कचरे के ढेर (उकरड़ा) में फेंक दे। परंतु वह दासी जाकर राजा विजय को यह बात बताती है। राजा विजय रानी मृगावती के पास आते हैं और उन्हें समझाते हैं: "यदि तुम अपने पहले बच्चे को यूं फेंक दोगी, तो संभव है कि भविष्य में तुम्हारा कोई भी

गर्भ स्थिर नहीं रहेगा। अतः तुम इसे गुप्त रूप से भोंयरे में रखकर उसका पालन-पोषण करो।" हे गौतम! वह मृगापुत्र आपने आज देखा है।

इस मनुष्य जन्म में 26 वर्ष का आयुष्य भुगतकर वह मृगापुत्र मरेगा और फिर सिंह बनेगा। वहाँ से प्रथम नरक में जाएगा, फिर वहाँ से निकलकर सरीसृप (साँप) बनेगा और मर कर वहाँ से द्वितीय नरक में जाएगा। वहाँ से निकलकर पक्षी बनेगा और मरकर तृतीय नरक में जाएगा। वहाँ से निकलकर सिंह बनेगा और फिर चतुर्थ नरक में जाएगा। वहाँ से उरग (साँप) बनेगा और मरकर पंचम नरक में जाएगा। वहाँ से निकलकर स्त्री बनेगा और मरकर छट्ठी नरक में जाएगा। वहाँ से पुरुष बनेगा और मरकर सातवीं नरक में जाएगा। वहाँ से निकलकर वह तिर्यंच गति (अधो गतियाँ: जलीय जीवों से लेकर पृथ्वीकाय पर्यंत) में लाखों बार जन्म-मरण को प्राप्त करेगा। अंत में वह महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य जन्म प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेगा।

अपेक्षित प्रश्न:

(1) मृगापुत्र दारक कौन था? (2) उसका जन्म किस अवस्था में हुआ? (3) मृगापुत्र गर्भ में आया तब रानी को क्या विचार आते थे? (4) मृगापुत्र दारक पूर्वभव में कौन था? (5) रानी गौतम स्वामी को जहाँ लेकर गई, उस स्थान का वर्णन करें। (6) मृगापुत्र गर्भ में था तब उसे कौन सा रोग हुआ था? (7) मृगा दारक का भविष्य क्या है?

3. दशार्णभद्र राजा

दशार्ण देश में दशार्ण नदी के किनारे स्थित दशार्णपुर नगर में दशार्णभद्र राजा राज्य करता था। एक बार श्रमण भगवान महावीर स्वामी चंपा नगरी से विहार करते हुए दशार्णपुर नगर पधारें। राजा के सेवकों ने जाकर राजा को प्रभु के आगमन का समाचार दिए। यह शुभ समाचार सुनकर राजा के हृदय में अमृत रस पिया हो, ऐसा दिव्य आनंद उत्पन्न हुआ।

राजा ने अपने मंत्रियों, सभासदों और राज-अधिकारियों को आज्ञा दी: "कल प्रभात में भगवान के दर्शन करने जाने जोरशोर से और सुंदर तयारी की जाए। मेरी सजावट और ठाट ऐसा होनी चाहिए, जैसी आज तक कोई भी भगवान के सत्कार और सन्मान करने इस प्रकार नहीं गया हो! नगर के राजमार्ग की सफाई और

सजावट उत्कृष्ट रूप में की जाए। सारा नगर शोभायमान होना चाहिए।''

भगवान महावीर दशार्ण नगर के बाहर एक बाग में विराजमान थे। देवताओं ने वहाँ समवसरण की रचना की। नगर का राजपथ राजसेवकों द्वारा सुसज्जित किया गया। नगर के द्वारों को भी भव्यता से सजाया गया। प्रातः राजा तैयार होकर हाथी पर सवार हुए और भगवान की वंदना के लिए रवाना हुए।

राजा के दोनों ओर चामर डुलाए जा रहे थे। मस्तक पर छत्र धारण किया हुआ था। राजा किसी देवता की भाति शोभायमान लग रहे थे। हज़ारों सेवक और सामंत वस्त्र और आभूषणों से सज्ज होकर राजा के पीछे आ रहे थे। उनके पीछे देवियों जैसी शोभायमान रानियाँ रथों में सवार होकर आ रही थी। राजसेवक राजा की गुणगाथाएँ गा रहे थे। हाथी, घोड़े, सैनिक और चतुरंगिणी सेना साथ चल रही थी। स्वर्गलोक से जैसे इन्द्र निकले हों, वैसे राजा नगर से बाहर निकले। राजा दशार्णभद्र गर्व और अभिमान से पूर्णतया फूले नहीं समा रहे थे।

राजा समवसरण के समीप पहुँचे, हाथी से उतरे और भगवान के दर्शन हेतु समवसरण में प्रविष्ट हुए। कमल की भाति भव्य जीवों को विकसित करने में, नूतन सूर्य के समान, प्रभु की तीन प्रदक्षिणाएँ की, वंदना की और गर्व से फूले हुए मन से एक उपयुक्त स्थान पर बैठ गए।

उसी समय प्रथम देवलोक के इन्द्र सौधर्म (शक्रेन्द्र) ने अपने अवधिज्ञान से भगवान को दशार्ण नगर में देखा और साथ ही राजा के भीतर उमड़ा हुआ गर्व भी देखा। सौधर्म इन्द्र ने राजा का अभिमान दूर करने हेतु अपनी वैक्रिय शक्ति का प्रयोग किया।

शक्रेन्द्र ने आठ मुखों वाला एक दिव्य हाथी रचा। प्रत्येक मुख में आठ दंत-शूल (दाँत) बनाए। हर दाँत में एक पुष्करिणी (सरोवर) निर्मित कि। इन्द्र ने हर सरोवर में आठ कमल स्थापित किए। हर कमल में आठ पंखुड़ियाँ बनाई। हर पंखुड़ी पर 32 नाटकों की रचना की। ऐसे अद्भुत गजेन्द्र (श्रेष्ठ दिव्य हाथी) पर आरूढ़ होकर सौधर्म इन्द्र अपनी लक्ष्मी (ऐश्वर्य) के द्वारा सम्पूर्ण आकाशमंडल को व्याप्त कर गए।

इन्द्र की इस अद्भुत, अलौकिक ऋद्धि को देखकर दशार्णभद्र राजा स्तब्ध रह गए। उन्हें अपना अभिमान और वैभव, इन्द्र के वैभव के सामने निरर्थक और तुच्छ लगा। वे गहन लज्जा की स्थिति में आ गए। अपने अहंकार पर बहुत खेद हुआ। मन

दुखी होकर चिंतन करने लगे। उन्हें अपना वैभव अब व्यर्थ प्रतीत हुआ। उन्हें समझ आ गया कि मनुष्य चाहे जितना भी दिखावा करे, संसार में उससे अधिक शक्तिशाली, दिव्य और समृद्ध कोई न कोई होता ही है। इसलिए मनुष्य को अपनी शक्ति या धन का अभिमान नहीं करना चाहिए। जैसा दिखावा करके वे प्रभु को वंदन करने आए थे, उससे कई गुना अधिक वैभव से सौधर्म इन्द्र भगवान के दर्शन करने उपस्थित हुए थे।

ऐसे स्वरूपवान, समृद्ध इन्द्र को देखकर राजा ने सोचा, "मेरे जैसे में ऐसी वैभवशाली संपत्ति कहाँ से आ सकती है? इस इन्द्र ने पूर्वभव में अहिंसा, संयम और तपस्वरूप निरवद्य धर्म का आचरण किया होगा, तभी उसे यह ऋद्धि प्राप्त हुई है। तो मैं भी अब ऐसे धर्म की आराधना करुं।" ऐसे विचार करते-करते राजा के मन में संसार के असार पदार्थों और सुखों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हुआ और यह भावना जागृत हुई कि, जिस संयम के पालन से मोक्षरूपी लक्ष्मी या देवगति की ऋद्धि प्राप्त होती है, वही संयम अब मैं भी लूँ।

राजा दशार्णभद्र ने अपने वस्त्र और आभूषणों का त्याग कर दिया। अपने केशों का लोच कर लिया और भगवान महावीर के पास जाकर दीक्षा ले ली। जब दशार्णभद्र राजा ने दीक्षा ले ली, तब सौधर्म इन्द्र स्वयं उनके पास आए और नमन करके बोले: "महात्मा! आपने दीक्षा ली है, इसलिए अब आप मेरे भी वंदनीय और पूजनीय बन गए हैं। आपकी आत्म-ऋद्धि के सामने मेरी भौतिक ऋद्धि कुछ भी नहीं है। आप धन्य हैं! अब आप छकाय को अभय प्रदान करने वाले, 17 प्रकार के संयम को पालन करने वाले बन गए हो इसलिए आपके त्याग और वैराग्य को मैं वंदन करता हूँ।"

दशार्णभद्र राजा ने इसके बाद संयम और तप की आराधना की और आत्मकल्याण कर लिया।

अपेक्षित प्रश्न:

(1) दशार्णभद्र राजा ने सैनिकों को क्या आज्ञा दी? (2) राजा के मन का अभिमान किसने जाना और कैसे उसका नाश किया? (3) इन्द्र के वैभव का वर्णन करें।

श्री भक्तामर स्तोत्र (1 से 8 कडी)

भक्तामर-प्रणत-मौलि - मणि - प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन -पाद - युगं युगादा-
वालम्बनं भव - जले - पततां जनानाम् ॥1॥

यःसंस्तुतः सकल वाङ्मय तत्त्वबोधा -
दुद्भूत बुद्धि - पटुभिः सुरलोक - नाथैः।
स्तोत्रैर् - जगत्त् -त्रितय चित्त हरै रुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपितं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥2॥

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधा - र्चित - पादपीठ !
स्तोतुं समुद्यत - मतिर्विगत - त्रपोहम्।
बालंविहाय जल संस्थित मिन्दु - बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ? ॥3॥

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र ! शशांक - कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरु - प्रतिमोपि बुद्ध्या?
कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - नक्र - चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ? ॥4॥

सोहं तथापि तव भक्ति - वशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगत - शक्ति - रपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्म - वीर्य - मविचार्य मृगो मृगेन्द्र,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ? ॥5॥

अल्प - श्रुतं, श्रुतवतां परिहास धाम,
त्वद् भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चारु चाम्र - कलिका - निकरैक - हेतुः ॥6॥

त्वत् - संस्तवेन भव - संतति - सन्निबद्धं,
पापं क्षणात् - क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोक - मलि - नीलम - शेषमाशु,
सूर्यांशु - भिन्नमिव शार्वर - मन्धकारम् ॥7॥

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद -
मारभ्यते तनु - धियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी - दलेषु,
मुक्ता - फल - द्युति मुपैति ननूद - बिन्दुः ॥8॥

2. साधु वंदणा (78 से 111 कडी)

श्रेणिक ना बेटा, जाली आदिक तेवीस ।
वीर पे व्रत लेई ने, पाल्यो विश्वावीस ॥78॥

तप कठिन करी ने, पूरी मन जगीश ।
देवलोके पहुंच्या, मोक्ष जासे तजी रीश ॥79॥

काकन्दी नो धन्नो, तजी बत्तीसे नार ।
महावीर समीपे, लीधो संयम भार ॥80॥

करी छठ-छठ पारणा, आयंबिल उज्झित आहार ।
श्री वीर बखाण्यो, धन धन्नो अणगार ॥81॥

एक मास संथारे, सर्वार्थसिद्ध पहुंत।
महाविदेह क्षेत्र मां, करसे भवनो अंत ॥82॥

धन्ना नी रीते, हुआ नव ही संत।
श्री अनुत्तरोववाई मां, भाखि गया भगवंत ॥83॥

सुबाहु प्रमुख, पांच-पांच सौ नार।
तजी वीर पे लीधा, पांच महाव्रत सार ॥84॥

चारित्र लेई ने, पाल्यो निर् अतिचार।
देवलोक पहुंच्या, सुखविपाके अधिकार ॥85॥

श्रेणिक ना पोता, पउमादिक हुआ दस।
वीर पे व्रत लेई ने, काढ्यो देह नो कस ॥86॥

संयम आराधी, देवलोक मां जई बस।
महाविदेह क्षेत्र मां, मोक्ष जासे लेई जस ॥87॥

बलभद्र ना नन्दन, निषधादिक हुआ बार।
तजी पचास अंतेउरी, त्याग दियो संसार ॥88॥

सहु नेमि समीपे, चार महाव्रत लीध।
सर्वार्थसिद्ध पहुंच्या, होसे विदेहे सिद्ध ॥89॥

धन्ना ने शालिभद्र, मुनीश्वरों नी जोड़।
नारी ना बंधन, तत्क्षण नांख्या तोड़ ॥90॥

घर-कुटुम्ब-कबीलो, धन-कंचन नी कोड़।
मास-मासखमण तप, टालसे भव नी खोड़ ॥91॥

श्री सुधर्मा ना शिष्य, धन-धन जंबू स्वाम ।
तजी आठ अंतेउरी, मात-पिता धन-धाम ॥92॥

प्रभवादिक तारी, पहुंच्या शिवपुर-ठाम ।
सूत्र प्रवर्तावी, जग मां राख्यूं नाम ॥93॥

धन ढंढण मुनिवर, कृष्णराय ना नंद ।
शुद्ध अभिग्रह पाली, टाल दियो भव-फंद ॥94॥

वलि खंदक ऋषि नी, देह उतारी खाल।
परीषह सही ने, भव-फेरा दिया टाल ॥95॥

वलि खंदक ऋषि ना, हुआ पांचसौ शिष्य ।
घाणी मां पील्या, मुक्ति गया तज रीश ॥96॥

संभूतिविजय-शिष्य, भद्रबाहु मुनिराय ।
चौदह पूर्वधारी, चंद्रगुप्त आण्यो ठाय ॥97॥

वलि आर्द्रकुंवर मुनि, स्थूलीभद्र नंदिषेण ।
अरणीक अइमुत्तो, मुनीश्वरों नी श्रेण ॥98॥

चौबीसे जिन ना मुनिवर, संख्या अठावीश लाख ।
ऊपर सहस्त्र अड़तालीस, सूत्र परंपरा भाख ॥99॥

कोई उत्तम वांचो, मोंढे जयणा राख ।
उघाड़े मुख बोल्यां, पाप लगे इम भाख ॥100॥

धन्य मरुदेवी माता, ध्यायो निर्मल ध्यान ।
गज-होदे पायो, निर्मल केवल ज्ञान ॥101॥

धन आदीश्वर नी पुत्री, ब्राह्मी सुन्दरी दोय।
चारित्र लेई ने, मुक्ति गई सिद्ध होय ॥102॥

चोबीसे जिन नी, बड़ी शिष्यणी चौबीस।
सती मुक्ति पहुंच्या, पूरी मन जगीश ॥103॥

चोबीसे जिन ना, सर्व साध्वी सार।
अड़तालीस लाख ने, आठ सो सत्तर हजार ॥104॥

चेड़ा नी पुत्री, राखी धर्म नी प्रीत।
राजीमती विजया, मृगावती सुविनीत ॥105॥

पद्मावती मयणरेहा, द्रौपदी दमयंती सीत।
इत्यादिक सतियां, गई जन्मारो जीत ॥106॥

चोबीसे जिन नां, साधु-साध्वी सार।
गया मोक्ष देवलोके, हृदय राखो धार ॥107॥

इण अढ़ी द्वीप मां, घरड़ा तपसी बाल।
शुद्ध पंच महाव्रत धारी, नमो नमो तिहुं काल ॥108॥

इण यतियों सतियों ना, लीजे नित प्रति नाम।
शुद्ध मन थी ध्यावो, एह तिरण नो ठाम ॥109॥

इण यतियों सतियों सूं, राखो उज्ज्वल भाव।
इम कहे ऋषि 'जयमल' एह तिरण नो दाव ॥110॥

संवत् अठारा ने, वर्ष साते सिरदार।
गढ़ जालोर मांही, एह कह्यो अधिकार ॥111॥

।।श्री महावीराय नमः।। ।।श्री वितरागाय नमः।। ।।श्री नमो नाणस्सः।।

श्री बृहद मुंबई वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ

Shree Brihad Mumbai Vardhman Sthanakvasi Jain Mahasangh

: प्रबंधित :

मातुश्री मणिबेन मणशी भीमशी छाडवा धार्मिक शिक्षण बोर्ड

Matushree Maniben Manshi Bhimshi Chhadva- Dharmik Shikshan Board,

Aaradhya one Earth - Gr floor, H wing,
Naidu colony, Pantnagar, Ghatkopar (East), Mumbai 400075

E-mail: jainshikshanboard@gmail.com **Website: www.jaineducationboard.org**

Our Website

- Contact Details of Shikshan Board office (Phone & Email)
- News and events related to examination and breaking news
- Know Goals and Visions of Board
- Facility to enroll for forthcoming exam online
- Historical exams and answer papers available from 2016
- Downloadable version of Shreni exam books
- Schedule of forthcoming Shreni exams available
- Access Photographs of various events
- View Past exams results

हमारी वेबसाइटसे

- शिक्षण बोर्ड कार्यालय के संपर्क विवरण (फोन और इमेल)
- परीक्षा और ब्रेकिंग न्यूज से संबंधित समाचार और कार्यक्रम।
- बोर्ड के लक्ष्यों और द्रष्टिकोणों को जानें।
- आगामी परीक्षा में आँनलाइन नामांकन करने की सुविधा।
- 2016 से परीक्षा के प्रश्नपेपर्स और उत्तर पत्र उपलब्ध हैं।
- प्रत्येक श्रेणी का पाठयक्रम डाउनलोड किया जा सकता है।
- परीक्षा की जानकारी समय पर मिल सकेगी।
- विविध आयोजनों की तस्वीरें उपलब्ध है।
- भूतकाल में दी गई परीक्षा के परिणाम जान सकेंगे।

8 कर्म